अब उनकी दशा परम कातर विरहिणीकी-सी हो गयी। वे उदास मनसे नखोंसे भूमिको कुरेदते हुए विषण्णवदन होकर अश्रु बहाने लगे और अपनेको बार-बार धिक्कारने लगे। इसी प्रकार दिन बीता, शाम हुई, अँधेरा छा गया और रात्रि हो गयी। प्रभुके भावमें कोई परिवर्तन नहीं। वही उन्माद, वही बेकली, वही विरह-वेदना उन्हें रह-रहकर व्यथित करने लगी। राय रामानन्द आये, स्वरूप गोस्वामीने सुन्दर-सुन्दर पद सुनाये, राय महाशयने कथा कही। कुछ भी धीरज न बँधा। 'हाय! श्याम! तुम किधर गये? मुझ दुःखिनी अबलाको मँझधारमें ही छोड़ गये। हाय! मेरे भाग्यको धिक्कार है, जो अपने प्राणवल्लभको पाकर भी मैंने फिर गँवा दिया। अब कहाँ जाऊँ! कैसे करूँ! किससे कहूँ, कोई सुननेवाला भी तो नहीं। हाय! ललिते! तू ही कुछ उपाय बता। ओ बहिन विशाखे! अरी, तू ही मुझे धीरज बँधा। मैना! मर जाऊँगी। प्यारेके बिना मैं प्राण धारण नहीं कर सकती। जोगिन बन जाऊँगी। घर-घर अलख जगाऊँगी, नरसिंहा लेकर बजाऊँगी, तनमें भभूत रमाऊँगी, मैं मारी-मारी फिरूँगी, किसीकी भी न सुनूँगी। या तो प्यारेके साथ जीऊँगी या आत्मघात करके मरूँगी! हाय! निर्दयी! ओ निष्ठुर श्याम! तुम कहाँ चले गये?' बस, इसी प्रकार प्रलाप करने लगे। रामानन्दजी आधी रात्रि होनेपर गम्भीरा मन्दिरमें प्रभुको सुलाकर चले गये। स्वरूप गोस्वामी वहीं गोविन्दके समीप ही पड़ रहे। महाप्रभु जोरोंसे बड़े ही करुणस्वरमें भगवान्‌के इन नामोंका उच्चारण कर रहे थे—

श्रीकृष्ण! गोविन्द! हरे! मुरारे! हे नाथ! नारायण! वासुदेव!

इन नामोंकी सुमधुर गूँज गोविन्द और स्वरूप गोस्वामीके कानोंमें भर गयी। वे इन नामोंको सुनते-सुनते ही सो गये। किन्तु प्रभुकी आँखोंमें नींद कहाँ, उनकी तो प्रायः सभी रातें हा नाथ! हा प्यारे! करते-करते

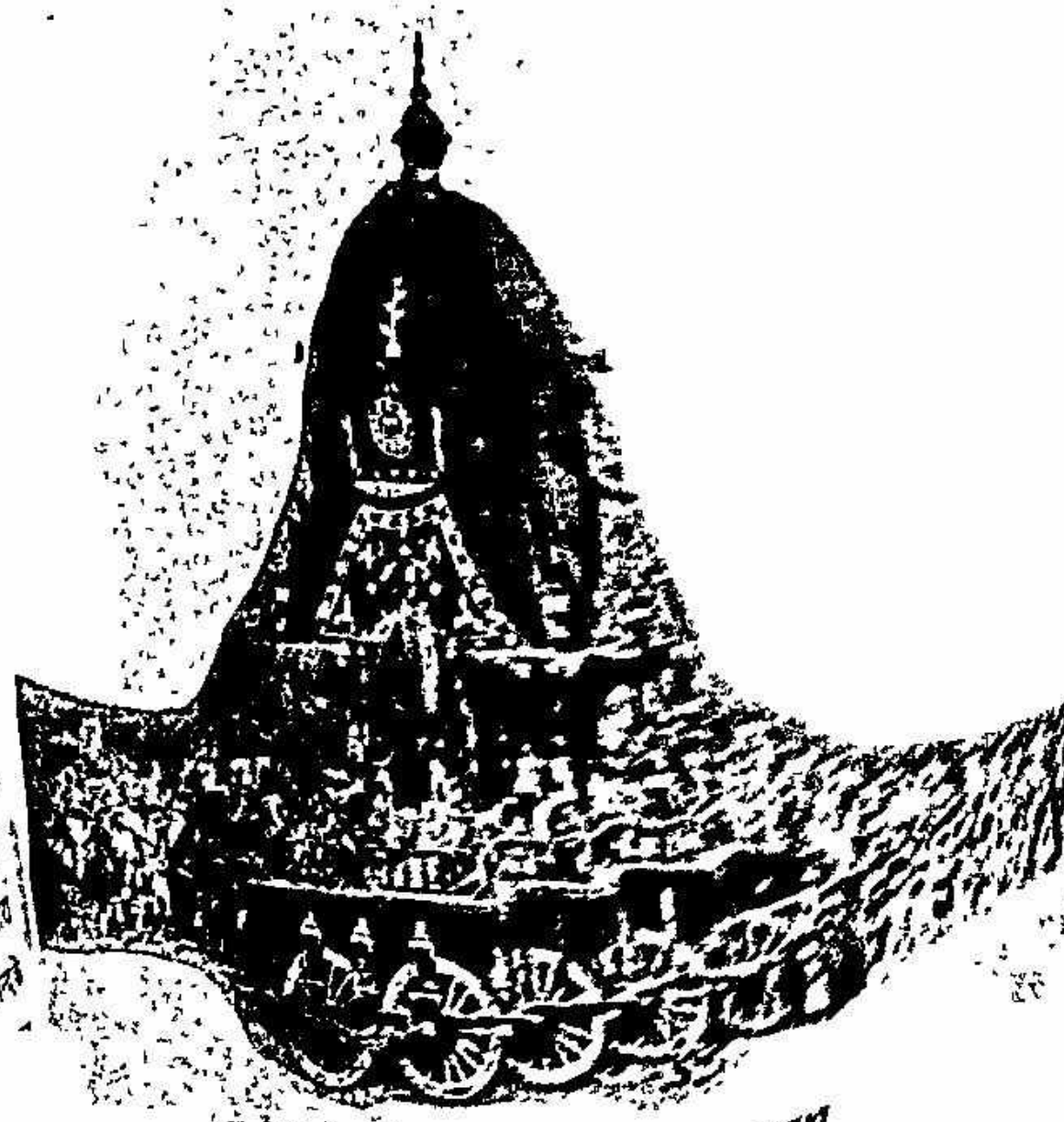

श्रीजगन्नाथजीकी रथ-यात्राका चित्र।

श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरका सिंहद्वार

ही बीतती थीं। थोड़ी देरमें स्वरूप गोस्वामीकी आँखें खुलीं तो उन्हें प्रभुका शब्द सुनायी नहीं दिया। सन्देह होनेसे वे उठे, गम्भीरामें जाकर देखा, प्रभु नहीं हैं। मानो उनके हृदयमें किसीने वज्र मार दिया हो। अस्त-व्यस्तभावसे उन्होंने दीपक जलाया। गोविन्दको जगाया। दोनों ही उस विशाल भवनके कोने-कोनेमें खोज करने लगे, किन्तु प्रभुका कहीं पता ही नहीं। सभी घबड़ाये से इधर-उधर भागने लगे। गोविन्दके साथ वे सीधे मन्दिरकी ओर गये, वहाँ जाकर क्या देखते हैं, सिंहद्वारके समीप एक मैले स्थानमें प्रभु पड़े हैं। उनकी आकृति विचित्र हो गयी थी। उनका शरीर खूब लंबा पड़ा था। हाथ पैर तथा सभी स्थानोंकी सन्धियाँ बिलकुल खुल गयी थीं। मानो किसीने टूटी हड्डियाँ लेकर चर्मके खोलमें भर दी हो। शरीर अस्त-व्यस्त पड़ा था। श्वास-प्रश्वासकी गति एकदम बंद थी। कविराज गोस्वामीने वर्णन किया है—

प्रभु पड़ि आछेन दीर्घ हात पाँच छय।
अचेतन देह नाशाय श्वास नाहि बय॥
एक-एक हस्त-पाद-दीर्घ तिन हात।
अस्थि, ग्रंथिभिन्न, चर्मे आछे मात्र तात॥
हस्त, पाद, ग्रीवा, कटि, अस्थि-संधि यत।
एक-एक वितस्ति भिन्न हय्या छे तत॥
चर्ममात्र उपरे, संधि आछे दीर्घ हय्या।
दुःखित हैला सबे प्रभुरे देखिया॥
मुखे लाला-फेन प्रभुर उत्तान-नयन।
देखिया सकल भक्तेर देह छाड़े प्रान॥*

---

* प्रभु पाँच-छः हाथ लंबे पड़े हुए थे, देह अचेतन थी, नासिकासे श्वास नहीं बह रहा था, एक-एक हाथ-पैर तीन-तीन हाथ लंबे हो गये थे,

अर्थ स्पष्ट है, भक्तोंने समझा प्रभुके प्राण शरीर छोड़कर चले गये। तब स्वरूप गोस्वामीने जोरोंसे प्रभुके कानोंमें कृष्णनामकी ध्वनि की। उस सुमधुर और कर्णप्रिय ध्वनिको सुनकर प्रभुको कुछ-कुछ बाह्य ज्ञान-सा होने लगा। वे एक साथ ही चौंककर 'हरि बोल' 'हरि बोल' कहते हुए उठ बैठे। प्रभुके उठनेपर धीरे-धीरे अस्थियोंकी सन्धियाँ अपने आप जुड़ने लगीं।

श्रीगोस्वामी रघुनाथदासजी वहीं थे, उन्होंने अपनी आँखोंसे प्रभुकी यह दशा देखी होगी। उन्होंने अपने 'चैतन्यस्तवकल्पवृक्ष' नामक ग्रन्थमें इस घटनाका यों वर्णन किया है—

क्वचिन्मिश्रावासे व्रजपतिसुतस्योरुविरहा
च्छ्लथत्सत्सन्धित्वाद्ध्रदधिकदैर्घ्यं भुजपदोः।
लुठन् भूमौ काकां विकलविकलं गद्गदवचा
रुदञ्छ्रीगौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति॥

किसी समय काशी मिश्रके भवनमें श्रीकृष्णविरह उत्पन्न होनेपर प्रभुकी सन्धियाँ ढीली पड़ जानेसे हाथ-पैर लंबे हो गये थे। पृथिवीपर काकुस्वरसे, गद्गद वचनोंसे जोरोंके साथ रुदन करते-करते लोट-पोट होने लगे, वे ही श्रीगौराङ्ग हमारे हृदयमें उदित होकर हमें मदमें मतवाला बना रहे हैं। उन हृदयमें उदित होकर मतवाले बनानेवाले श्रीगौराङ्गके और मदमत्त बने श्रीरघुनाथदासजीके चरणोंमें हमारा साष्टाङ्ग प्रणाम है।

हड्डियोंकी सभी सन्धियाँ अलग-अलग हो गयी थीं, केवल ऊपर चर्म-ही-चर्म चढ़ा हुआ था। हाथ, पैर, ग्रीवा और कटि हड्डियोंके जोड़ एक-एक वितस्ति अलग-अलग हो गये थे। ऊपर चर्ममात्र था, सन्धि ढीली हो गयी थी। महाप्रभुकी ऐसी दशा देखकर सभी भक्त दुःखी हो गये। उनके मुखसे लार और फेन बह रहा था, नेत्र चढ़े हुए थे। उनकी ऐसी दशा देखकर भक्तोंके प्राण शरीरको परित्याग करके जाने लगे।

गोवर्धनके भ्रमसे चटकगिरिकी ओर गमन

समीपे नीलाद्रेश्चटकगिरिराजस्य कलना-
दये गोष्ठे गोवर्धनगिरिपतिं लोकितुमितः।
व्रजन्नस्मीत्युक्त्वा प्रमद इव धावन्नवधृते
गणैः स्वैर्गौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति ॥*

(चैतन्यस्तवकल्पवृक्ष)

महाप्रभुकी अब प्रायः तीन दशाएँ देखी जाती थीं—अन्तर्दशा, अर्धबाह्यदशा और बाह्यदशा। अन्तर्दशामें वे गोपीभावसे या राधा-भावसे श्रीकृष्णके विरहमें, मिलनमें भाँति-भाँतिके प्रलाप किया करते थे। अर्धबाह्यदशामें अपनेको कुछ-कुछ समझने लगते और अब थोड़ी देर पहले जो देख रहे थे, उसे ही अपने अन्तरङ्ग भक्तोंको सुनाते थे और उस भावके बदलनेके कारण पश्चात्ताप प्रकट करते हुए रुदन भी करते

* श्रीरघुनाथदास गोस्वामी कहते हैं—नीलाचलके निकट समुद्रकी बालुकाके चटकपर्वतको देखकर गोवर्धनके भ्रमसे 'मैं गिरिराज गोवर्धनके दर्शन करूँगा' ऐसा कहकर महाप्रभु उस ओर दौड़ने लगे। अपने सभी विरक्त वैष्णवों-से वेष्टित वही गौराङ्ग हमारे हृदयमें उदित होकर हमें पागल बना रहे हैं।

अर्थ स्पष्ट है, भक्तोंने समझा प्रभुके प्राण शरीर छोड़कर चले गये। तब स्वरूप गोस्वामीने जोरोंसे प्रभुके कानोंमें कृष्णनामकी ध्वनि की। उस सुमधुर और कर्णप्रिय ध्वनिको सुनकर प्रभुको कुछ-कुछ बाह्य ज्ञान-सा होने लगा। वे एक साथ ही चौंककर 'हरि बोल' 'हरि बोल' कहते हुए उठ बैठे। प्रभुके उठनेपर धीरे-धीरे अस्थियोंकी सन्धियाँ अपने आप जुड़ने लगीं।

श्रीगोस्वामी रघुनाथदासजी वहीं थे, उन्होंने अपनी आँखोंसे प्रभुकी यह दशा देखी होगी। उन्होंने अपने 'चैतन्यस्तवकल्पवृक्ष' नामक ग्रन्थमें इस घटनाका यों वर्णन किया है—

क्वचिन्मिश्रावासे व्रजपतिसुतस्योरुविरहा
च्छ्लथरसरसन्धित्वाद्वधदधिकदैर्घ्यं भुजपदोः।
लुठन् भूमौ काकां विकलविकलं गद्गदवचा
रुदन्च्छ्रीगौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति॥

किसी समय काशी मिश्रके भवनमें श्रीकृष्णविरह उत्पन्न होनेपर प्रभुकी सन्धियाँ ढीली पड़ जानेसे हाथ-पैर लंबे हो गये थे। पृथिवीपर काकुस्वरसे, गद्गद वचनोंसे जोरोंके साथ रुदन करते-करते लोट-पोट होने लगे, वे ही श्रीगौराङ्ग हमारे हृदयमें उदित होकर हमें मदमें मतवाला बना रहे हैं। उन हृदयमें उदित होकर मतवाले बनानेवाले श्रीगौराङ्गके और मदमत्त बने श्रीरघुनाथदासजीके चरणोंमें हमारा साष्टाङ्ग प्रणाम है।

हड्डियोंकी सभी सन्धियाँ अलग-अलग हो गयी थीं, केवल ऊपर चर्म-ही-चर्म चढ़ा हुआ था। हाथ, पैर, ग्रीवा और कटि हड्डियोंके जोड़ एक-एक वितस्ति अलग-अलग हो गये थे। ऊपर चर्ममात्र था, सन्धि ढीली हो गयी थी। महाप्रभुकी ऐसी दशा देखकर सभी भक्त दुःखी हो गये। उनके मुखसे लार और फेन बह रहा था, नेत्र चढ़े हुए थे। उनकी ऐसी दशा देखकर भक्तोंके प्राण शरीरको परित्याग करके जाने लगे।

गोवर्धनके भ्रमसे चटकगिरिकी ओर गमन

समीपे नीलाद्रेश्चटकगिरिराजस्य कलना-
द्ये गोष्ठे गोवर्धनगिरिपतिं लोकितुमितः।
व्रजन्नस्मीत्युक्त्वा भ्रमद इव धावन्नवशते
गणैः स्वैर्गौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति॥*

(चैतन्यस्तवकल्पवृक्ष)

महाप्रभुकी अब प्रायः तीन दशाएँ देखी जाती थीं—अन्तर्दशा, अर्धबाह्यदशा और बाह्यदशा। अन्तर्दशामें वे गोपीभावसे या राधा-भावसे श्रीकृष्णके विरहमें, मिलनमें भाँति-भाँतिके प्रलाप किया करते थे। अर्धबाह्यदशामें अपनेको कुछ-कुछ समझने लगते और अब थोड़ी देर पहले जो देख रहे थे, उसे ही अपने अन्तरङ्ग भक्तोंको सुनाते थे और उस भावके बदलनेके कारण पश्चात्ताप प्रकट करते हुए रुदन भी करते

---

* श्रीरघुनाथदास गोस्वामी कहते हैं—नीलाचलके निकट समुद्रकी बालुकाके चटकपर्वतको देखकर गोवर्धनके भ्रमसे 'मैं गिरिराज गोवर्धनके दर्शन करूँगा' ऐसा कहकर महाप्रभु उस ओर दौड़ने लगे। अपने सभी विरक्त वैष्णवोंसे वेष्टित वही गौराङ्ग हमारे हृदयमें उदित होकर हमें पागल बना रहे हैं।

थे। बाह्यदशामें खूब अच्छी—भली बातें करते थे और सभी भक्तोंका यथायोग्य सत्कार करते, बड़ोंको प्रणाम करते, छोटोंकी कुशल पूछते। इस प्रकार उनकी तीन ही दशाएँ भक्तोंको देखनेमें आती थीं। तीसरी दशामें तो वे बहुत ही कम कभी-कभी आते थे, नहीं तो सदा अन्तर्दशा या अर्धबाह्यदशामें ही मग्न रहते थे। स्नान, शयन, भोजन और पुरुषोत्तम-दर्शन, ये तो शरीरके स्वभावानुसार स्वतः ही सम्पन्न होते रहते थे। अर्ध-बाह्यदशामें भी इन कामोंमें कोई विघ्न नहीं होता था। प्रायः उनका अधिकांश समय रोनेमें और प्रलापमें ही बीतता था। रोनेके कारण आँखें सदा चढ़ी-सी रहती थीं, निरन्तरकी अश्रुधाराके कारण उनका वक्षःस्थल सदा भीगा ही रहता था। अश्रुओंकी धारा बहनेसे कपोलोंपर कुछ हल्की-सी पपड़ी पड़ गयी थी और उनमें कुछ पीलापन भी आ गया था। रामानन्द राय और स्वरूपदामोदर ही उनके एकमात्र सहारे थे। विरहकी वेदनामें इन्हें ही ललिता और विशाखा समझकर तथा इनके गलेसे लिपट-कर वे अपने दुःखको कुछ शान्त करते थे। स्वरूप गोस्वामीके कोकिल-कूजित कण्ठसे कविता श्रवण करके वे परमानन्द सुखका अनुभव करते थे। उनका विरह उन प्रेममयी पदावलियोंके श्रवणसे जितना ही अधिक बढ़ता था, उतनी ही उन्हें प्रसन्नता होती थी और वे उठकर नृत्य करने लगते थे।

एक दिन महाप्रभु समुद्रकी ओर जा रहे थे, दूरसे ही उन्हें वालुकाका चटक नामक पहाड़-सा दीखा। बस फिर क्या था, जोरोंकी हुंकार मारते हुए आप उसे ही गोवर्धन समझकर उसी ओर दौड़े। इनकी अद्भुत हुंकारको सुनकर जो भी भक्त जैसे बैठा था, वह वैसे ही इनके पीछे दौड़ा। किन्तु भला, ये किसके हाथ आनेवाले थे! वायुकी भाँति आवेशके झोंकोंके साथ उड़े चले जा रहे थे। उस समय इनके सम्पूर्ण शरीरमें सभी सात्त्विक विकार उत्पन्न हो गये थे। बड़ी ही विचित्र और

अभूतपूर्व दशा थी। कविराज गोस्वामीने अपनी मार्मिक लेखनीसे बड़ी ही ओजस्विनी भाषामें इनकी दशाका वर्णन किया है। उन्हींके शब्दोंमें सुनिये—

प्रति रोमकूपे मांस व्रणेर आकार।
तार उपरे रोमोद्गम कदंब प्रकार॥
प्रतिरोमे प्रस्वेद पड़े रुधिरेर धार।
कंठ घर्घर, नाहि वर्णेर उच्चार॥
दुई नेत्रे भरि, अश्रु बहये अपार।
समुद्रे मिलिला येन गंगा-यमुना धार॥
वैवर्ण शंख प्राय, स्वेद हेल अंग।
तबे कंप उठे येन समुद्रे तरंग॥

अर्थात् 'प्रत्येक रोमकूप मानो मासका फोड़ा ही बन गया है, उनके ऊपर रोम ऐसे दीखते हैं जैसे कदम्बकी कलियाँ। प्रत्येक रोमकूपसे रक्तकी धारके समान पसीना बह रहा है। कण्ठ घर्घर शब्द कर रहा है, एक भी वर्ण स्पष्ट सुनायी नहीं देता। दोनों नेत्रोंमेंसे अपार अश्रुओंकी दो धाराएँ बह रही हैं मानो गङ्गाजी और यमुनाजी मिलनेके लिये समुद्रकी ओर जा रही हों। वैवर्णके कारण मुख शंखके समान सफेद-सा पड़ गया है। शरीर पसीनेसे लथपथ हो गया है। शरीरमेंसे कँपकँपी ऐसे उठती है मानो समुद्रमेंसे तरङ्गें उठ रही हों।'

ऐसी दशा होनेपर प्रभु और आगे न बढ़ सके। वे थर-थर काँपते हुए एकदम भूमिपर गिर पड़े। गोविन्द पीछे दौड़ा आ रहा था, उसने प्रभुको इस दशामें पड़ा हुआ देखकर उनके मुखमें जल डाला और अपने वस्त्रसे वायु करने लगा। इतनेमें ही जगदानन्द पण्डित, गदाधर गोस्वामी, रमाई, नदाई तथा स्वरूपदामोदर-आदि भक्त पहुँच गये।

प्रभुकी ऐसी विचित्र दशा देखकर सभीको परम विस्मय हुआ। सभी प्रभुको चारों ओरसे घेरकर उच्चस्वरसे संकीर्तन करने लगे। अब प्रभुको कुछ-कुछ होश आया। वे हुंकार मारकर उठ बैठे और अपने चारों ओर भूले-से, भटके-से, कुछ गँवाये-से इधर-उधर देखने लगे। और स्वरूप-गोस्वामीसे रोते-रोते कहने लगे—'अरे! हमें यहाँ कौन ले आया? गोवर्धन-परसे यहाँ हमें कौन उठा लाया! अहा! वह कैसी दिव्य छटा थी, गोवर्धनकी नीरव निकुञ्जमें नन्दलालने अपनी वही बाँसकी वंशी बजायी। उसकी मीठी ध्वनि सुनकर मैं भी उसी ओर उठ धायी। राधारानी भी अपनी सखी-सहेलियोंके साथ उसी स्थानपर आयीं। अहा! उस साँवरेकी कैसी सुन्दर मन्द मुसकान थी! उसकी हँसीमें जादू था। सभी गोपिकाएँ अकी-सी, जकी-सी, भूली-सी, भटकी-सी, उसीको लक्ष्य करके दौड़ी आ रही थीं। सहसा वह साँवला अपनी सर्वश्रेष्ठ सखी श्रीराधिकाजीको साथ लेकर न जाने किधर चला गया। तब क्या हुआ कुछ पता नहीं। यहाँ मुझे कौन उठा लाया?' इतना कहकर प्रभु बड़े ही जोरोंसे हा कृष्ण! हा प्राणवल्लभ! हा हृदयरमण! कहकर जोरोंसे रुदन करने लगे।

प्रभुकी इस अद्भुत दशाका समाचार सुनकर श्रीपरमानन्दजी पुरी और ब्रह्मानन्दजी भारती भी दौड़े आये। अब प्रभुकी एकदम बाह्य दशा हो गयी थी, अतः उन्होंने श्रद्धापूर्वक इन दोनों पूज्य संन्यासियोंको प्रणाम किया और संकोचके साथ कहने लगे—'आपने क्यों कष्ट किया! व्यर्थ ही इतनी दूर आये।'

पुरी गोस्वामीने हँसकर कहा—'हम भी चले आये कि चलकर तुम्हारा नृत्य ही देखें।'

इतना सुनते ही प्रभु लज्जित-से हो गये। भक्तवृन्द महाप्रभुको साथ लेकर उनके निवासस्थानपर आये

श्रीकृष्णान्वेषण

पयोराशेस्तीरे स्फुरदुपवनाली कलनया
मुहुर्वृन्दारण्यस्मरणजनितप्रेमविवशः ।
क्वचित् कृष्णावृत्तिप्रचलरसनो भक्तिरसिकः
स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम्॥

(स्त० मा० १ चैतन्याष्टक ६)

महाप्रभु एक दिन समुद्रकी ओर स्नान करनेके निमित्त जा रहे थे। दूरसे ही समुद्रतटकी शोभाको देखकर वे मुग्ध हो गये। वे खड़े होकर

---

* समुद्रतटके सुन्दर उपवनको देखकर प्रभुको बार-बार वृन्दावनकी निभृत निकुञ्ज याद आने लगी। उस अनुपम अरण्यके स्मरणमात्रसे ही प्रभु प्रेमविवश हो गये। उन भक्तिरसिक श्रीगौराङ्गकी चञ्चल रसना निरन्तर 'कृष्ण-कृष्ण' इन नामोंकी आवृत्ति करने लगी। ऐसे वे श्रीगौराङ्ग फिर कभी हमारे दृष्टिगोचर होंगे क्या?

उस अद्भुत छटाको निहारने लगे। अनन्त जलराशिसे पूर्ण सरितापति सागर अपने नीलरङ्गके जलसे अटखेलियाँ करता हुआ कुछ गम्भीर-सा शब्द कर रहा है। समुद्रके किनारेपर खजूर, ताड़, नारियल और अन्य विविध प्रकारके ऊँचे-ऊँचे वृक्ष अपने लंबे-लंबे पल्लवरूपी हाथोंसे पथिकोंको अपनी ओर बुला-से रहे हैं। वृक्षोंके अङ्गोंका जोरोंसे आलिङ्गन किये हुए उनकी प्राणप्यारी लताएँ धीरे-धीरे अपने कोमल करोंको हिला-हिलाकर संकेतसे उन्हें कुछ समझा रही हैं। नीचे एक प्रकारकी नीली-नीली घास अपने हरे-पीले-लाल तथा भाँति-भाँतिके रंगवाले पुष्पोंसे उस वन्यस्थलीकी शोभाको और भी अधिक बढ़ाये हुए है। मानो श्रीकृष्णकी गोपियोंके साथ होनेवाली रासक्रीड़ाके निमित्त नीले रङ्गके विविध चित्रोंसे चित्रित कालीन बिछ रही हो। महाप्रभु उस मनमोहिनी दिव्य छटाको देखकर आत्मविस्मृत-से बन गये। वे अपनेको प्रत्यक्ष श्रीवृन्दावनमें ही खड़ा हुआ समझने लगे। समुद्रका नीला जल उन्हें यमुनाजल ही दिखायी देने लगा। उस क्रीड़ास्थलीमें सखियोंके साथ श्रीकृष्णको क्रीड़ा करते न देखकर उन्हें रासमें भगवान्‌के अन्तर्धान होनेकी लीला स्मरण हो उठी। बस, फिर क्या था, लगे वृक्षोंसे श्रीकृष्णका पता पूछने। वे अपनेको गोपी समझकर वृक्षोंके समीप जाकर बड़े ही करुणस्वरमें उन्हें सम्बोधन करके पूछने लगे—

हे कदम्ब ! हे निम्ब ! अंब ! क्यों रहे मौन गहि।
हे बट ! उतँग सुरंग धीर कहु तुम इत उत लहि॥
हे असोक ! हरि-सोक लोकमनि पियहि बतावहु।
अहो पनस ! सुभ सरस मरत-तिय अमिय पियावहु॥

इतना कहकर फिर आप ही-आप कहने लगे—'अरी सखियो! ये पुरुष जातिके वृक्ष तो उस साँवलेके संगी-साथी ही हैं। पुरुष जाति तो निर्दयी

होती है। ये परायी पीरको क्या जाने। चलो, लताओंसे पूछें। स्त्री-जाति होनेसे उनका चित्त दयामय और कोमल होता है, वे हमें अवश्य ही प्यारेका पता बतावेंगी। सखि! इन लताओंसे तो पूछो। देखें, ये क्या कहती हैं!' यह कहकर आप लताओंको सम्बोधन करके उसी प्रकार अश्रु-विमोचन करते हुए गद्गद कण्ठसे करुणाके साथ पूछने लगे—

हे मालति! हे जाति! जूथके! सुनि हित दे चित।
मान-हरन मन-हरन लाल गिरिधरन लखे इत॥
हे केतकि! इततें कितहूँ चितये पिय रूसे।
कै नँदनन्दन मन्द मुसुकि तुमरे मन मूसे॥

फिर स्वतः ही कहने लगी—'अरी सखियो! ये तो कुछ भी उत्तर नहीं देतीं। चलो, किसी औरसे ही पूछें।' यह कहकर आगे बढ़ने लगे। आगे फलोंके भारसे नवे हुए बहुत-से वृक्ष दिखायी दिये। उन्हें देखकर कहने लगे—'सखि! ये वृक्ष तो अन्य वृक्षोंकी भाँति निर्दयी नहीं जान पड़ते। देखो, सम्पत्तिशाली होकर भी कितने नम्र हैं। इन्होंने इधरसे जानेवाले प्यारेका अवश्य ही सत्कार किया होगा। क्योंकि जो सम्पत्ति पाकर भी नम्र होते हैं, उन्हें कैसा भी अतिथि क्यों न हो, प्राणोंसे भी अधिक प्रिय होता है। इनसे प्यारेका पता अवश्य लग जायेगा। हाँ, तो मैं ही पूछती हूँ।' यह कहकर वे वृक्षोंसे कहने लगे—

हे मुक्ताफल! बेल धरे मुक्ताफल माला।
देखे नैन-बिसाल मोहना नँदके लाला॥
हे मन्दार! उदार वीर करबीर! महामति।
देखे कहुँ बलबीर धीर, मन-हरन धीर-गति॥

फिर चन्दनकी ओर देखकर कहने लगे—'यह बिना ही माँगे सबको शीतलता और सुगन्ध प्रदान करता है, यह हमारे ऊपर अवश्य दया करेगा', इसलिये कहते हैं—

हे चन्दन ! दुखनन्दन ! सबकी जरन जुड़ावहु ।
नँदनन्दन, जगवन्दन, चन्दन ! हमहिं बतावहु ॥

फिर पुष्पोंसे फूली हुई लताओंकी ओर देखकर मानो अपने साथकी सखियोंसे कह रहे हैं—

पूछो री इन लतनि फूलि रहिं फूलनि जोई ।
सुन्दर पियके परस बिना अस फूल न होई ॥

प्यारी सखियो ! अवश्य ही प्यारेने अपनी प्रिय सखीको प्रसन्न करनेके निमित्त इनपरसे फूल तोड़े हैं, तभी तो ये इतनी प्रसन्न हैं । प्यारेके स्पर्श बिना इतनी प्रसन्नता आ ही नहीं सकती । यह कहकर आप उनकी ओर हाथ उठा-उठाकर कहने लगे—

हे चम्पक ! हे कुसुम ! तुम्हैं छबि सबसों न्यारी ।
नेक बताय जु देहु जहाँ हरि कुंज-बिहारी ॥

इतनेमें ही कुछ मृग उधरसे दौड़ते हुए आ निकले । उन्हें देख-देखकर जल्दी कहने लगे—

हे सखि ! हे मृगबधू ! इन्हैं किन पूछहु अनुसरि ।
डहडहे इनके नैन अबहिं कहुँ देखे हैं हरि ॥

हे तुलसी ! कल्यानि ! सदा गोविँद-पद-प्यारी ।
क्यों न कहौ तुम नन्द-सुवन सों बिथा हमारी ॥

इतना कहकर आप जोरोंसे समुद्रकी ओर दौड़ने लगे और समुद्रके जलको यमुना समझकर कहने लगे—

हे जमुना ! सब जानि बूझि तुम हठहिं गहत हो ।
जो जल जग उद्धार ताहि तुम प्रकट बहत हो ॥

थोड़ी देरमें उन्हें मालूम हुआ कि करोड़ों कामदेवोंके सौन्दर्यको फीका बनानेवाले श्रीकृष्ण कदम्बके नीचे खड़े मुरली बजा रहे हैं । उन्हें देखते ही प्रभु उनकी ओर जल्दीसे दौड़े । बीचमें ही मूर्छा आनेसे बेहोश होकर गिर पड़े । उसी समय राय रामानन्द, स्वरूप गोस्वामी, शंकर, गदाधर पण्डित और जगदानन्द आदि वहाँ आ पहुँचे । प्रभु अब अर्धबाह्य दशामें थे । वे आँखें फाड़-फाड़कर चारों ओर कृष्णकी खोज कर रहे थे और स्वरूप गोस्वामीके गलेको पकड़कर रोते-रोते कह रहे थे—'अभी तो थे, अभी इसी क्षण तो मैंने उनके दर्शन किये थे । इतनी ही देरमें वे मुझे ठगकर कहाँ चले गये । मैं अब प्राण धारण न करूँगी । प्यारेके विरहमें मर जाऊँगी । हाय ! दुर्भाग्य मेरा पीछा नहीं छोड़ता । पाये हुएको भी मैं गँवा बैठी ।' राय रामानन्दजी भाँति-भाँतिकी कथाएँ कहने लगे । स्वरूप गोस्वामीसे प्रभुने कोई पद गानेके लिये कहा । स्वरूप गोस्वामी अपनी उसी पुरानी सुरीली तानसे गीतगोविन्दके इस पदको गाने लगे—

ललितलवङ्गलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे ।
मधुकरनिकरकरम्बितकोकिलकूजितकुञ्जकुटीरे ॥
विहरति हरिरिह सरसवसन्ते ।
नृत्यति युवतिजनेन समं सखि विरहिजनस्य दुरन्ते ॥ १ ॥

उन्मदमदनमनोरथपथिकवधूजनजनितविलापे ।
अलिकुलसङ्कुलकुसुमसमूहनिराकुलवकुलकलापे॥२॥

इस पदको सुनते ही प्रभुके सभी अङ्ग-प्रत्यङ्ग फड़कने लगे। वे सिर हिलाते हुए कहने लगे—'अहा, विहरति हरिरिह सरसवसन्ते !' ठीक है, स्वरूप ! आगे सुनाओ। मेरे कर्णोंमें इस अमृतको चुआ दो। तुम चुप क्यों हो गये ! इस अनुपम रससे मेरे हृदयको भर दो, कानोंमें होकर बहने लगे। और कहो, और कहो। आगे सुनाओ, फिर क्या हुआ। स्वरूप पदको आगे गाने लगे—

मृगमदसौरभरभसवशंवदनवदलमालतमाले ।
युवजनहृदयविदारणमनसिजनखरुचिकिंशुकजाले॥३॥
मदनमहीपतिकनकदण्डरुचिकेसरकुसुमविकासे ।
मिलितशिलीमुखपाटलपटलकृतस्मरतूणविलासे ॥४॥

महाप्रभुने कहा—'अहा धन्य है, रुको मत, आगे बढ़ो। हाँ 'स्मरतूणविलासे' ठीक है, फिर ?' स्वरूप गोस्वामी गाने लगे—

विगलितलज्जितजगदवलोकनतरुणकरुणकृतहासे ।
विरहिनिकृन्तनकुन्तमुखाकृतिकेतकिदन्तुरिताशे॥५॥
माधविकापरिमललिते नवमालतिजातिसुगन्धौ ।
मुनिमनसामपि मोहनकारिणि तरुणाकारणबन्धौ॥६॥

महाप्रभु कहने लगे—'धन्य धन्य, 'अकारणबन्धौ' सचमुच वसन्त युवक-युवतियोंका अकृत्रिम सखा है। आगे कहो, आगे'—स्वरूप उसी स्वरमें मस्त होकर गाने लगे—

स्फुरदतिमुक्तलतापरिरम्भणमुकुलितपुलकितचूते ।
वृन्दावनविपिने परिसरपरिगतयमुनाजलपूते ॥७॥

श्रीजयदेवभणितमिदमुदयतिहरिचरणस्मृतिसारम्।
सरसवसन्तसमयवनवर्णनमनुगतमदनविकारम्॥८॥

महाप्रभु इस पदको सुनते ही नृत्य करने लगे। उन्हें फिर आत्म-विस्मृति हो गयी। वे बार-बार स्वरूप गोस्वामीका हाथ पकड़कर उनसे पुनः-पुनः पद-पाठ करनेका आग्रह कर रहे थे। प्रभुकी ऐसी उन्मत्तावस्था-को देखकर सभी विस्मृत-से बन गये। स्वरूप गोस्वामी प्रभुकी ऐसी दशा देखकर पद गाना नहीं चाहते थे, प्रभु उनसे बार-बार आग्रह कर रहे थे। जैसे-तैसे रामानन्दजीने उन्हें बिठाया, उनके ऊपर जल छिड़का और वे अपने वस्त्रसे वायु करने लगे। प्रभुको कुछ-कुछ चेत हुआ। तब राय महाशय सभी भक्तोंके साथ प्रभुको समुद्रतटपर ले गये। वहाँ जाकर सबने प्रभुको स्नान कराया। स्नान कराके सभी भक्त प्रभुको उनके निवासस्थानपर ले गये। अब प्रभुको कुछ-कुछ बाह्य ज्ञान हुआ। तब सभी भक्त अपने-अपने घरोंको चले गये।

उन्मादावस्थाकी अद्भुत आकृति

अनुद्घाट्य द्वारत्रयमुरु च भित्तित्रयमहो
विलङ्घ्योच्चैः कालिङ्गिकसुरभिमध्ये निपतितः।
तनूद्यत्संकोचात् कमठ इव कृष्णोरुविरहा-
द्विराजन् गौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति॥*

(चैत० स्त० कल्पवृक्ष)

महाप्रभुकी दिव्योन्मादावस्था बड़ी ही अद्भुत थी। उन्हें शरीरका ही जब होश नहीं था, तब शरीरको स्वस्थ रखनेकी परवा तो रह ही कैसे सकती है? अपनेको शरीरसे एकदम पृथक् समझकर सभी चेष्टाएँ किया करते थे। उनको हृदयको हिला देनेवाली अपूर्व बातोंको सुनकर ही हम शरीराध्यासियोंके तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं। क्या एक शरीर-धारी प्राणी इस प्रकार शरीरकी सुधि भुलाकर ऐसे भयङ्कर व्यापार कर सकता है, जिसके श्रवणसे ही भय मालूम पड़ता हो, किन्तु चैतन्यदेवने तो ये सभी चेष्टाएँ की थीं और श्रीरघुनाथदास गोस्वामीने प्रत्यक्ष अपनी आँखोंसे उन्हें देखा था। इतनेपर भी कोई अविश्वास करे तो करता रहे। महाप्रभुकी गम्भीराकी दशा वर्णन करते हुए कविराज गोस्वामी कहते हैं—

गम्भीरा-भितरे रात्रे नाहि निद्रा-लव,
भित्ते मुख-शिर घषे क्षत हय सब।
तीन द्वारे कपाट प्रभु यायेन बाहिरे,
कभू सिंहद्वारे पड़े, कभू सिन्धु नीरे॥

---

* श्रीरघुनाथ गोस्वामी कहते हैं—'बंद हुए तीनों द्वारोंको बिना खोले ही और तीनों परकोटाओंकी भित्तियों लाँघकर जो कृष्णविरहमें पागल हुए शरीरको संकोचके कारण उन्मादावस्थामें कछुएकी तरह बनाये हुए कलिङ्गदेशीय गौओंके बीचमें जा पड़े थे, वे ही गौराङ्ग मेरे हृदयमें उदित होकर मुझे मदमत्त बना रहे हैं।'

अर्थात् 'गम्भीरा मन्दिरके भीतर महाप्रभु एक क्षणके लिये भी नहीं सोते थे। कभी मुख और सिरको दीवारोंसे रगड़ने लगते। इस कारण रक्तकी धारा बहने लगती और सम्पूर्ण मुख क्षत-विक्षत हो जाता। कभी द्वारोंके बंद रहनेपर भी बाहर आ जाते, कभी सिंहद्वारपर जाकर पड़ रहते तो कभी समुद्रके जलमें ही कूद पड़ते।' कैसा दिलको दहला देनेवाला हृदयविदारक वर्णन है।

कभी-कभी बड़े ही करुणस्वरमें जोरोंसे रुदन करने लगते, उस करुणाक्रन्दनको सुनकर पत्थर भी पसीजने लगते और वृक्ष भी रोते हुए-से दिखायी पड़ते। वे बड़े ही करुणापूर्ण शब्दोंमें रोते-रोते कहते—

कहाँ मोर प्राणनाथ मुरलीवदन
काहाँ करों काहाँ पाओं व्रजेन्द्रनन्दन।
काहारे कहिब, केवा जाने मोर दुःख,
व्रजेन्द्रनन्दन बिना फाटे मोर बुक॥

'हाय! मेरे प्राणनाथ कहाँ हैं? जिनके मुखपर मनोहर मुरली विराजमान है ऐसे मेरे मनमोहन मुरलीधर कहाँ हैं? अरी, मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? मैं अपने प्यारे व्रजेन्द्रनन्दनको कहाँ पा सकूँगा? मैं अपनी विरह-वेदनाको किससे कहूँ? कहूँ भी तो मेरे दुःखको जानेगा ही कौन? परायी पीरको समझनेकी सामर्थ्य ही किसमें है? उन प्यारे व्रजेन्द्रनन्दन प्राणधनके बिना मेरा हृदय फटा जा रहा है।' इस प्रकार वे सदा तड़फते-से रहते। मछली जैसे कीचड़में छटपटाती है, सिर कटनेपर बकरेका सिर जिस प्रकार थोड़ी देरतक इधर-उधर छटपटाता-सा रहता है उसी प्रकार वे दिन-रात छटपटाते रहते। रात्रिमें उनकी विरह-वेदना और भी अधिक बढ़ जाती। उसी वेदनामें वे स्थानको छोड़कर इधर-उधर भाग जाते और जहाँ भी बेहोश होकर गिर पड़ते वहीं पड़े रहते। एक दिनकी एक अद्भुत घटना सुनिये—

नियमानुसार स्वरूप गोस्वामी और राय रामानन्दजी प्रभुको कृष्ण-कथा और विरहके पद सुनाते रहे। सुनाते-सुनाते अर्धरात्रि हो गयी। राय महाशय अपने घर चले गये, स्वरूप गोस्वामी अपनी कुटियामें पड़ रहे।

यह तो हम पहले ही बता चुके हैं कि गोविन्दका महाप्रभुके प्रति वात्सल्य-भाव था। उसे प्रभुकी ऐसी दयनीय दशा असह्य थी। जिस प्रकार वृद्धा माता अपने एकमात्र पुत्रको पागल देखकर सदा उसके शोकमें उद्विग्न-सी रहती है, उसी प्रकार गोविन्द सदा उद्विग्न बना रहता। प्रभु कृष्णविरहमें दुखी रहते और गोविन्द प्रभुकी विरहावस्थाके कारण सदा खिन्न-सा बना रहता। वह प्रभुको छोड़कर पलभर भी इधर-उधर नहीं जाता। प्रभुको भीतर सुलाकर आप गम्भीराके दरवाजेपर सोता। हमारे पाठकोंमेंसे बहुतोंको अनुभव होगा कि किसी यन्त्रका इञ्जिन सदा धक्-धक् शब्द करता रहता है। सदा उसके पास रहनेवाले लोगोंके कानमें वह शब्द भर जाता है, फिर सोते-जागतेमें वह शब्द बाधा नहीं पहुँचाता, उसकी ओर ध्यान ही नहीं जाता, उसके इतने भारी कोलाहलमें भी नींद आ जाती है। रात्रिमें सहसा वह बंद हो जाय तो झट उसी समय नींद खुल जाती है और अपने चारों ओर देखकर उस शब्दके बंद होनेकी जिज्ञासा करने लगते हैं। गोविन्दका भी यही हाल था। महाप्रभु रात्रिभर जोरोंसे करुणाके साथ पुकारते रहते—

श्रीकृष्ण ! गोविन्द ! हरे ! मुरारे !
हे नाथ ! नारायण ! वासुदेव !

ये शब्द गोविन्दके कानोंमें भर गये थे, इसलिये जब भी ये बंद हो जाते तभी उसकी नींद खुल जाती और वह प्रभुकी खोज करने लगता। स्वरूप गोस्वामी और राय महाशयके चले जानेपर प्रभु जोरोंसे रोते-रोते श्रीकृष्णके नामोंका कीर्तन करते रहे। गोविन्द द्वारपर ही सो रहा था। रात्रिमें सहसा उसकी आँखें अपने-आप ही खुल गयीं।

गोविन्द शंकित तो सदा बना ही रहता था, वह जल्दीसे उठकर बैठा हो गया, उसे प्रभुकी आवाज नहीं सुनायी दी। घबड़ाया-सा काँपता हुआ वह गम्भीराके भीतर गया। जल्दीसे चकमक जलाकर उसने दीपकको जलाया। वहाँ उसने जो कुछ देखा, उसे देखकर वह सन्न रह गया। महाप्रभुका बिस्तरा ज्यों-का-त्यों ही पड़ा है, महाप्रभु वहाँ नहीं हैं। गोविन्दको मानो लाखों बिच्छुओंने एक साथ काट लिया हो। उसने जोरोंसे स्वरूप गोस्वामीको आवाज दी। गुसाईं-गुसाईं! प्रलय हो गयी, हाय, मेरा भाग्य फूट गया। गुसाईं! जल्दी दौड़ो। महाप्रभुका कुछ पता नहीं।' गोविन्दके करुणाक्रन्दनको सुनकर स्वरूप गोस्वामी जल्दीसे उतरकर नीचे आये। दोनोंके हाथ काँप रहे थे। काँपते हुए हाथोंसे उन्होंने उस विशाल भवनके कोने-कोनेमें प्रभुको ढूँढ़ा। प्रभुका कुछ पता नहीं। उस किलेके समान भवनके तीन परकोटा थे, उनके तीनों दरवाजे ज्यों-के-त्यों ही बंद थे। अब भक्तोंको आश्चर्य इस बातका हुआ कि प्रभु गये किधरसे। आकाशमेंसे उड़कर तो कहीं चले नहीं गये। सम्भव है यहीं कहीं पड़े हों। घबड़ाया हुआ आदमी पागल ही हो जाता है। बावला गोविन्द सुईकी तरह जमीनमें हाथसे टटोल-टटोलकर प्रभुको ढूँढ़ने लगा। स्वरूप गोस्वामीने कुछ प्रेमकी भर्त्सनाके साथ कहा—'गोविन्द! क्या तू भी पागल हो गया? अरे! महाप्रभु कोई सुई तो हो ही नहीं गये जो इस तरह हाथसे टटोल रहा है, जल्दीसे मशाल जला। समुद्रतटपर चलें, सम्भव है वहीं पड़े होंगे। इस विचारको छोड़ दे कि किवाड़ें बंद होनेपर वे बाहर कैसे गये। कैसे भी गये हों, बाहर ही होंगे।' काँपते-काँपते गोविन्दने जल्दीसे मशालमें तेल डाला, उसे दीपकसे जलाकर वह स्वरूप गोस्वामीके साथ जाने-को तैयार हुआ। जगदानन्द, वक्रेश्वर पण्डित, रघुनाथदास आदि सभी भक्त मिलकर प्रभुको खोजने चले। सबसे पहले मन्दिरमें ही भक्त खोजते थे।

इसलिये सिंहद्वारकी ही ओर सब चले। वहाँ उन्होंने बहुत-सी मोटी-मोटी तैलङ्गी गौओंको खड़े देखा। पगला गोविन्द जोरोंसे चिल्ला उठा—'यहीं होंगे।' किसीने उसकी बातपर ध्यान नहीं दिया। भला गौओंके बीचमें प्रभु कहाँ, सब आगे बढ़ने लगे। किन्तु विक्षिप्त गोविन्द गौओंके भीतर घुसकर देखने लगा। वहाँ उसने जो कुछ देखा उसे देखकर वह डर गया। जोरोंसे चिल्ला उठा—'गुसाईं! यहाँ आओ देखो, यह क्या पड़ा है?' सभी उसी ओर दौड़े। कोई भी न जान सका यह गौओंके बीचमें कौन-सा जानवर पड़ा है, गौएँ उसे बड़े ही स्नेहसे चाट रही हैं। गोविन्द मशालको उसके समीप ले गया और जोरोंसे चिल्ला उठा—'महाप्रभु हैं।' भक्तोंने भी ध्यानसे देखा। सचमुच महाप्रभु ही हैं। उस समय उनकी आकृति कैसी बन गयी थी उसे कविराज गोस्वामीके शब्दोंमें सुनिये—

पेटेर भितर हस्त-पाद कूर्मेर आकार।
मुखे फेन, पुलकाङ्ग नेत्रे अश्रुधार॥
अचेतन पड़िया छेन येन कूष्माण्डफल।
बाहिरे जड़िमा अन्तरे आनन्दविह्वल॥
गाभि सब चौदिके शुँके प्रभुर श्रीअङ्ग।
दूर कैले नाहि छाड़े प्रभुर अङ्ग सङ्ग॥

अर्थात् 'महाप्रभुके हाथ-पैर पेटके भीतर धँसे हुए थे। उनकी आकृति कछुएकी-सी बन गयी थी। मुखसे निरन्तर फेन निकल रहा था, सम्पूर्ण अङ्गके रोम खड़े हुए थे। दोनों नेत्रोंसे अश्रुधारा बह रही थी। वे कूष्माण्ड फलकी भाँति अचेतन पड़े हुए थे। बाहरसे तो जड़ता प्रतीत होती थी, किन्तु भीतर-ही-भीतर वे आनन्दमें विह्वल हो रहे थे। गौएँ चारों ओर खड़ी होकर प्रभुके श्रीअङ्गको सूँघ रही थीं। उन्हें बार-

बार हटाते थे, किन्तु वे प्रभुके अङ्गके सङ्गको छोड़ना ही नहीं चाहती थीं। फिर वहीं आ जाती थीं।'

अस्तु, भक्तोंने मिलकर संकीर्तन किया। कानोंमें जोरोंसे हरिनाम सुनाया, जल छिड़का, वायु की तथा और भी भाँति-भाँतिके उपाय किये, किन्तु प्रभुको चेतना नहीं हुई। तब विवश होकर भक्तवृन्द उन्हें उसी दशामें उठाकर निवासस्थानकी ओर ले चले। वहाँ पहुँचनेपर प्रभुको कुछ-कुछ होश होने लगा। उनके हाथ-पैर धीरे-धीरे पेटमेंसे निकलकर सीधे होने लगे। शरीरमें कुछ-कुछ रक्तका सञ्चार-सा होता हुआ प्रतीत होने लगा। थोड़ी ही देरमें अर्धबाह्य दशामें आकर इधर-उधर देखते हुए जोरोंके साथ क्रन्दन करते हुए कहने लगे—'हाय, हाय! मुझे यहाँ कौन ले आया? मेरा वह मनमोहन श्याम कहाँ चला गया? मैं उसकी मुरलीकी मनोहर तानको सुनकर ही गोपियोंके साथ उधर चली गयी। श्यामने अपने सङ्केतके समय वही मनोहारिणी मुरली बजायी। उस मुरली-रवमें ऐसा आकर्षण था कि सखियोंकी पाँचों इन्द्रियाँ उसी ओर आकर्षित हो गयीं। ठकुरानी राधारानी भी गोपियोंको साथ लेकर सङ्केतके शब्दको सुनकर उसी ओर चल पड़ीं। अहा! उस कुञ्ज-काननमें वह कदम्ब विटपके निकट ललित त्रिभङ्गीगतिसे खड़ा बाँसुरीमें सुर भर रहा था। वह भाग्यवती मुरली उसके अधरामृतपानसे उन्मत्त-सी होकर शब्द कर रही थी। उस शब्दमें कितनी करुणा थी, कैसी मधुरिमा थी, कितना आकर्षण था, कितनी मादकता, मोहकता, प्रवीणता, पटुता, प्रगल्भता और परवशता थी। उसी शब्दमें बावली बनी मैं उसी ओर निहारने लगी। वह छिछोरा मेरी ओर देखकर हँस रहा था।' फिर चौंककर कहने लगे—'स्वरूप! मैं कहाँ हूँ? मैं कौन हूँ? मुझे यहाँ क्यों ले आये? अभी-अभी तो मैं वृन्दावनमें था। यहाँ कहाँ?'

प्रभुकी ऐसी दशा देखकर स्वरूप गोस्वामी श्रीमद्भागवतके उसी प्रसङ्गके श्लोकोंको बोलने लगे। उनके श्रवणमात्रसे ही प्रभुकी उन्मादावस्था फिर ज्यों-की-त्यों हो गयी। वे बार-बार स्वरूप गोस्वामीसे कहते—'हाँ सुनाओ, ठीक है, वाह-वाह, सचमुच, हाँ यही तो है, इसीका नाम तो अनुराग है।' ऐसा कहते-कहते वे स्वयं ही श्लोककी व्याख्या करने लगते। फिर स्वयं भी बड़े करुणस्वरमें श्लोक बोलने लगते—

प्रेमच्छेदरुजोऽवगच्छति हरिर्नायं न च प्रेम वा
स्वानास्वानमवैति नापि मदनो जानाति नो दुर्बलाः।
अन्यो वेद न चान्यदुःखमखिलं नो जीवनं वाध्रुवं
द्वित्रीण्येव दिनानि यौवनमिदं हा हा विधेः का गतिः॥*

इस श्लोककी फिर आप ही व्याख्या करते-करते कहने लगे—'हाय! दुःख भी कितना असह्य है, यह प्रेम भी कैसा निर्दयी है। मदन हमारे ऊपर दया नहीं करता। कितनी बेकली है, कैसी विवशता है, कोई मनकी बातको क्या जाने। अपने दुःखका आप ही अनुभव हो सकता है। अपने पास तो कोई प्यारेको रिझानेकी वस्तु नहीं। मान लें

---

* ये श्रीकृष्ण न तो हमारे प्रेमको ही जानते हैं और न उसके विच्छेदसे होनेवाली पीड़ाका ही अनुभव करते हैं। इधर, यह कामदेव स्थानास्थानका विचार नहीं करता, इसे हमारी दुर्बलताका ज्ञान नहीं है [हमपर प्रहार करता ही जा रहा है]। किसीसे कहें भी तो क्या कहें, कोई पराये पीरका अनुभव भी तो नहीं करता। हमारे जीवन और कष्टकी ओर भी तो ध्यान नहीं देता। यह यौवन भी अधिक टिकाऊ नहीं है; दो-तीन दिनमें इसका भी अन्त है। हाय! विधाताकी कैसी वाम गति है!

वह हमारे नवयौवनके सौन्दर्यसे मुग्ध होकर हमें प्यार करने लगेगा, सो यह यौवन भी तो स्थायी नहीं। जलके बुद्बुदोंके समान यह भी तो क्षणभङ्गुर है। दो-चार दिनोंमें फिर अँधेरा-ही-अँधेरा है। हा! विधाताकी गति कैसी वाम है! यह इतना अपार दुःख हम अबलाओंके ही भाग्यमें क्यों लिख दिया! हम एक तो वैसे ही अबला कही जाती हैं, रहे-सहे बलको यह विरहकूकर खा गया। अब दुर्बलातिदुर्बल होकर हम किस प्रकार इस असह्य दुःखको सहन कर सकें।' इस प्रकार प्रभु अनेक श्लोकोंकी व्याख्या करने लगे। विरहके वेगके कारण आप-से-आप ही उनके मुखसे विरहसम्बन्धी ही श्लोक निकल रहे थे और स्वयं उनकी व्याख्या भी करते जाते थे। इस प्रकार व्याख्या करते-करते जोरोंसे रुदन करते-करते फिर उसी प्रकार श्रीकृष्णके विरहमें उन्मत्त-से होकर करुण-कण्ठसे प्रार्थना करने लगे—

हा हा कृष्ण प्राणधन, हा हा पद्मलोचन।
हा हा दिव्य सद्गुण-सागर!
हा हा श्यामसुन्दर, हा हा पीताम्बर-धर।
हा हा रासविलास-नागर!
काहाँ गेले तोमा पाई, तुमि कह, ताहाँ याई।
एत कहि चलिला धाय्या!

हे कृष्ण! हा प्राणधन! हा पद्मलोचन! ओ दिव्य सद्गुणोंके सागर! ओ श्यामसुन्दर! प्यारे, पीताम्बर-धर! ओ रासविलास-नागर! कहाँ जानेसे तुम्हें पा सकूँगा? तुम कहो वहीं जा सकता हूँ। इतना कहते-कहते प्रभु फिर उठकर बाहरकी ओर दौड़ने लगे। तब स्वरूप गोस्वामीने उन्हें पकड़कर बिठाया। फिर आप अचेतन हो गये। होशमें आनेपर स्वरूप गोस्वामीसे कुछ गानेको कहा। स्वरूप गोस्वामी अपनी उसी सुरीली तानसे गीतगोविन्दके सुन्दर-सुन्दर पद गाने लगे।

लोकातीत दिव्योन्माद

स्वकीयस्य प्राणार्बुदसदृशगोष्ठस्य विरहात्
प्रलापानुन्मादात् सततमतिकुर्वन् विकलधीः ।
दधच्चित्तौ शश्वद्वदनविधुघर्षेण रुधिरं
क्षतोत्थं गौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति ॥*

(चैत० स्त० कल्पवृक्ष)

महाप्रभुकी दिव्योन्मादकी अवस्थाका वर्णन करना कठिन तो है ही, साथ ही बडा ही हृदयविदारक है । हम वज्र-जैसे हृदय रखनेवालोंकी बात छोड़ दीजिये, किन्तु जो सहृदय हैं, भावुक हैं, सरस हैं, परपीड़ानुभवी हैं, मधुर रतिके उपासक हैं, कोमल हृदयके हैं, जिनका हृदय परपीड़ाश्रवणसे ही भर आता है, जिनका अन्तःकरण अत्यन्त लुजलुजा—शीघ्र ही द्रवित हो जानेवाला है, वे तो इन प्रकरणोंको पढ़ भी नहीं सकते । सचमुच इन अपठनीय अध्यायोंका लिखना हमारे ही भाग्यमें बदा था । क्या करें, विवश हैं हमारे हाथमें बलपूर्वक यह लौहकी लेखनी दे दी गयी है । इतना ग्रन्थ लिखनेपर भी यह डाकिनी अभी ज्यों-की-त्यों ही बनी है, घिसती भी नहीं । न जाने किस यन्त्रालयमें यह खास तौरसे हमारे ही लिये बनायी गयी थी । हाय ! जिसके

---

* जो अपने असंख्य प्राणोंके समान प्रिय है, उस व्रजके विरहसे विकल हो उन्मादवश जो निरन्तर अधिक प्रलाप कर रहे हैं तथा जो अपने चन्द्रमाके समान सुन्दर श्रीमुखको दीवारमें घिसनेके कारण बहे हुए रक्तसे रञ्जित कर रहे हैं, ऐसे श्रीगौराङ्गदेव हमारे हृदयमें उदित होकर हमें मदमत्त बना रहे हैं ।

मुखकमलके वर्णनमें इस लेखनीने स्थान-स्थानपर अपना कलाकौशल दिखाया है, आज उसी मुखकमलके संघर्षणकी करुण-कहानी इसे लिखनी पड़ेगी। जिस श्रीमुखकी शोभाको स्मरण करके लेखनी अपने लौहपनेको भूल जाती थी, वही अब अपने काले मुँहसे उस रक्तसे रञ्जित मुखका वर्णन करेगी। इस लेखनीका मुख ही काला नहीं है। किन्तु इसके पेटमें भी काली स्याही भर रही है और स्वयं भी काली ही है। इसे मोह कहाँ, ममता कैसी, रुकना तो सीखी ही नहीं। लेखनी! तेरे इस क्रूर कर्मको बार-बार धिक्कार है।

महाप्रभुकी विरह-वेदना अब अधिकाधिक बढ़ती ही जाती थी। सदा राधाभावमें स्थित होकर आप प्रलाप करते रहते थे। कृष्णको कहाँ पाऊँ, श्याम कहाँ मिलेंगे, यही उनकी टेक थी। यही उनका अहर्निशका व्यापार था। एक दिन राधाभावमें ही आपको श्रीकृष्णके मथुरागमनकी स्फूर्ति हो आयी, आप उसी समय बड़े ही करुणस्वरमें राधाजीके समान इस श्लोकको रोते-रोते गाने लगे—

क्व नन्दकुलचन्द्रमाः क्व शिखिचन्द्रकालङ्कृतः
क्व मन्दमुरलीरवः क्व नु सुरेन्द्रनीलद्युतिः।
क्व रासरसताण्डवी क्व सखि जीवरक्षौषधि-
र्निधिर्मम सुहृत्तमः क्व बत हन्त हा विन्विधिम्॥ *

---

* प्यारी सखि! वह नन्दकुलका प्रकाशक चन्द्र कहाँ है? प्यारी! वह मयूरकी पुच्छोंका मुकुट पहननेवाला वनमाली कहाँ चला गया? अहा! वह मुरलीकी मन्द-मन्द मनोहर ध्वनि सुनानेवाला अब कहाँ गया? वह इन्द्रनील मणिके समान कमनीय कान्तिमान् प्यारा कहाँ है? रासमण्डलमें थिरक-थिरककर नृत्य करनेवाला वह नटराज कहाँ चला गया? सखि! हमारे जीवनकी एकमात्र अमोघ ओषधिस्वरूप वह छलिया कहाँ है? हमारे प्राणोंसे भी प्यारा वह सुहृद् किस देशमें चला गया? हमारी अमूल्य निधिको कौन लूट ले गया? हा विधाता! तुझे बार-बार धिक्कार है।

इस प्रकार विधाताको बार-बार धिक्कार देते हुए प्रभु उसी भावावेशमें श्रीमद्भागवतके श्लोकोंको पढ़ने लगे। इस प्रकार आधीराततक आप अश्रु बहाते हुए गोपियोंके विरहसम्बन्धी श्लोकोंकी ही व्याख्या करते रहे।

अर्धरात्रि बीत जानेपर नियमानुसार स्वरूप गोस्वामीने प्रभुको गम्भीराके भीतर सुलाया और राय रामानन्द अपने घरको चले गये। महाप्रभु उसी प्रकार जोरोंसे चिल्ला-चिल्लाकर नाम-संकीर्तन करते रहे। आज प्रभुकी वेदना पराकाष्ठाको पहुँच गयी। उनके प्राण छटपटाने लगे। अङ्ग किसी प्यारेके आलिङ्गनके लिये छटपटाने लगे। मुख किसीके मुखको अपने ऊपर देखनेके लिये हिलने लगा। ओष्ठ किसीके मधुमय, प्रेममय शीतलतापूर्ण अधरोंके स्पर्शके लिये स्वतः ही काँपने लगे। प्रभु अपने आवेशको रोकनेमें एकदम असमर्थ हो गये। वे जोरोंसे अपने अति कोमल सुन्दर श्रीमुखको दीवारमे घिसने लगे। दीवारकी रगड़के कारण उसमेंसे रक्त बह चला। प्रभुका गला रुँधा हुआ था, श्वास कष्टसे बाहर निकलता था। कण्ठ घर-घर शब्द कर रहा था। रक्तके बहनेसे वह स्थान रक्तवर्णका हो गया। वे लंबी-लंबी साँस लेकर गों-गों ऐसा शब्द कर रहे थे। उस दिन स्वरूप गोस्वामीको भी रात्रिभर नींद नहीं आयी। उन्होंने प्रभुका दबा हुआ 'गों गों' शब्द सुना। अब इस बातको कविराज गोस्वामीके शब्दोंमें सुनिये—

विरहे व्याकुल प्रभुर उद्वेग उठिला।
गम्भीरा-भितरे मुख घर्षिते लागिला॥
मुखे, गण्डे, नाके, क्षत हइल अपार।
भावावेशे ना जानेन प्रभु पड़े रक्तधार॥

सर्वरात्रि करेन भावे मुखसंघर्षण।
गों-गों शब्द करेन, स्वरूप सुनिल तखन ॥७

गों-गों शब्द सुनकर स्वरूप गोस्वामी उसी क्षण उठकर प्रभुके पास आये। उन्होंने दीपक जलाकर जो देखा उसे देखकर वे आश्चर्यचकित हो गये। महाप्रभु अपने मुखको दीवारमें घिस रहे हैं। दीवार लाल हो गयी है, नीचे रुधिर पड़ा है। गेरुए रंगके वस्त्र रक्तमें सराबोर हो रहे हैं। प्रभुकी दोनों आँखें चढ़ी हुई हैं। वे बार-बार जोरोंसे मुखको उसी प्रकार रगड़ रहे हैं। नाक छिल गयी है। उनकी दशा विचित्र थी—

रोमकूपे रक्तोद्गम दंत सब हाले।
क्षणे अंग क्षीण हय क्षणे अंग फूले॥

जिस प्रकार सेही नामके जानवरके शरीरपर लंबे-लंबे काँटे होते हैं और क्रोधमें वे एकदम खड़े हो जाते हैं, उसी प्रकार प्रभुके अङ्गके सम्पूर्ण रोम सीधे खड़े हुए थे, उनमेंसे रक्तकी धारा बह रही थी। दाँत हिल रहे थे और कड़-कड़ शब्द कर रहे थे। अङ्ग कभी तो फूल जाता था और कभी क्षीण हो जाता था। स्वरूप गोस्वामीने इन्हें पकड़कर उस कर्मसे रोका। तब प्रभुको कुछ बाह्य ज्ञान हुआ। स्वरूप गोस्वामीने दुःखित चित्तसे पूछा—'प्रभो! यह आप क्या कर रहे हैं? मुँहको क्यों घिस रहे हैं?'

---

* महाप्रभु जब विरहमें अत्यन्त ही व्याकुल हुए तो उन्हें उद्वेग उठा। गम्भीराके भीतर अपने मुखको घिसने लगे। मुख, कपोल, नाक—ये सभी घायल हो गये, भावावेशमें प्रभुको ज्ञान नहीं पड़ा। मुखसे रक्तकी धारा बह रही थी, सम्पूर्ण रात्रि भावमें विभोर होकर मुखको घिसते रहे। गों-गों शब्द करते थे। स्वरूप गोस्वामीने उनका गों-गों शब्द सुना।

महाप्रभु उनके प्रश्नको सुनकर स्वस्थ हुए और कहने लगे—'स्वरूप! मैं तो एकदम पागल हो गया हूँ। न जाने क्यों रात्रि मेरे लिये अत्यन्त ही दुःखदायी हो जाती है। मेरी वेदना रात्रिमें अत्यधिक बढ़ जाती है। मैं विकल होकर बाहर निकलना चाहता था। अँधेरेमें दरवाजा ही नहीं मिला। इसीलिये दीवारमें दरवाजा करनेके निमित्त मुँह घिसने लगा। यह रक्त निकला या घाव हो गया, इसका मुझे कुछ भी पता नहीं।'

इस बातसे स्वरूपदामोदरको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने अपनी चिन्ता भक्तोंपर प्रकट की, उनमेंसे शङ्करजीने कहा—'यदि प्रभुको आपत्ति न हो, तो मैं उनके चरणोंको हृदयपर रखकर सदा शयन किया करूँगा, इससे वे कभी ऐसा काम करेंगे भी तो मैं रोक दूँगा।' उन्होंने प्रभुसे प्रार्थना की, प्रभुने कोई आपत्ति नहीं की। इसलिये उस दिनसे शङ्करजी सदा प्रभुके पादपद्मोंको अपने वक्षःस्थलपर धारण करके सोया करते थे। प्रभु इधर-से-उधर करवट भी लेते, तभी उनकी आँखें खुल जातीं और वे सचेष्ट हो जाते। वे रात्रि-रात्रिभर जागकर प्रभुके चरणोंको दबाते रहते थे। इस भयसे प्रभु अब बाहर नहीं भाग सकते थे। उसी दिनसे शङ्करजीका नाम पड़ गया 'प्रभुपादोपाधान'। सचमुच वे प्रभुके पैरोंके तकिया ही थे। उन तकिया लगानेवाले महाराजके, और तकिया बने हुए सेवकके चरणोंमें हमारा बार-बार प्रणाम है।

शारदीय निशीथमें दिव्य गन्धका अनुसरण

कुरङ्गमदजिद्वपुःपरिमलोर्मिकृष्टाङ्गनः ।
स्वकाङ्गनलिनाष्टके शशियुताब्जगन्धप्रथः ॥
मदेन्दुवरचन्दनागुरुसुगन्धिचर्चार्चितः ।
स मे मदनमोहनः सखि तनोति नासास्पृहाम् ॥ *

(गोविन्दलीला० ८ । ६)

विरहव्यथासे व्यथित व्यक्तियोंके लिये प्रकृतिके यावत् सौन्दर्य-पूर्ण सामान हैं वे ही अत्यन्त दुःखदायी प्रतीत होते हैं। सम्पूर्ण ऋतुओंमें श्रेष्ठ वसन्तऋतु, शुक्लपक्षका प्रवृद्ध चन्द्र, शीतल मन्द सुगन्धित मलय मारुत, मेघकी घनघोर गर्जना, अशोक, तमाल, कमल, मृणाल आदि शोक-नाशक और शीतलता प्रदान करनेवाले वृक्ष तथा उनके नवपल्लव, मधुकर, हंस, चकोर, कृष्णसार, सारङ्ग, मयूर, कोकिल, शुक, सारिका आदि सुहावने सुन्दर और सुमधुर वचन बोलनेवाले पक्षी ये सभी विरहकी अग्निको और अधिक बढ़ाते हैं। विरहिणीको सुख कहाँ, आनन्द कैसा? प्रकृतिका कोई भी प्रिय पदार्थ उसे प्रसन्नता प्रदान नहीं कर सकता।

---

* श्रीराधिकाजी अपनी सखी विशाखाजीसे कह रही हैं—

सखि! जो मृगमदको भी लजानेवाली अपने शरीरकी सुगन्धसे गोपाङ्गनाओंको अपनी ओर खींच रही हैं, जिनके कमलवत् आठों अङ्गोंमें कर्पूरयुक्त पद्मगन्ध सुवासित हो रही है; जिनका सम्पूर्ण शरीर कस्तूरी, कर्पूर, चन्दन और अगरसे चर्चित है वे मदनमोहन मेरी नासिकाकी तृष्णाको और बढ़ा रहे हैं। अर्थात् उस वनमालीके वपुकी दिव्य गन्ध मुझे हठात् अपनी ओर खींच रही है।

सभी उसे रुलाते हैं, सभीको विरहिणीके खिझानेमें ही आनन्द आता है। पपीहा पी-पी कहकर उसके कलेजेमें कसक पैदा करता है, वसन्त उसे उन्मादी बनाता है। फूले हुए वृक्ष उसकी हँसी करते हैं और मलयाचल-का मन्दवाही मारुत उसकी मीठी-मीठी चुटकियाँ लेता है। मानो ये सब प्रपञ्च विधाताने विरहिणीको ही खिझानेके लिये रचे हों। बेचारी सबकी सहती है, दिन-रात रोती है और इन्हीं सबसे अपने प्रियतमका पता पूछती है, कैसी बेबसी है। क्यों, है न? सहृदय पाठक अनुभव तो करते ही होंगे।

वैशाखी पूर्णिमा थी, निशानाथ अपनी सहचरी निशादेवीके साथ खिलखिलाकर हँस रहे थे। उनका सुमधुर श्वेत हास्यका प्रकाश दिशा-विदिशाओंमें व्याप्त था। प्रकृति इन पति-पत्नियोंके सम्मेलनको दूरसे देखकर मन्द-मन्द मुसकरा रही थी। पवन धीरे-धीरे पैरोंकी आहट बचाकर चल रहा था। शोभा सजीव होकर प्रकृतिका आलिङ्गन कर रही थी। समुद्रतटके जगन्नाथवल्लभ नामक उद्यानमें प्रभु विरहिणीकी अवस्थामें विचरण कर रहे थे। स्वरूपदामोदर, राय रामानन्द प्रभृति अन्तरङ्ग भक्त उनके साथ थे। महाप्रभुके दोनों नेत्रोंसे निरन्तर अश्रु प्रवाहित हो रहे थे। मुख कुछ-कुछ म्लान था। चन्द्रमाकी चमकीली किरणें उनके श्रीमुखका धीरे-धीरे चुम्बन कर रही थीं। अनजानके उस चुम्बनसुखसे उनके अरुण रंगके अधर श्वेतवर्णके प्रकाशके साथ और भी अधिक द्युतिमान् होकर शोभाकी भी शोभाको बढ़ा रहे थे। महाप्रभुका वही उन्माद, वही बेकली, वही छटपटाहट, उसी प्रकार रोना, उसी तरहकी प्रार्थना करना था, उसी प्रकार घूम घूमकर वे अपने प्रियतमकी खोज कर रहे थे। प्यारेको खोजते-खोजते वे अत्यन्त ही करुणस्वरसे इस श्लोकको पढ़ते जाते थे—

तच्छैशवं त्रिभुवनाद्भुतमित्यवेहि
मय्यापलञ्च तव वा मम वाधिगम्यम्।
तत् किं करोमि विरलं मुरलीविलासि
मुग्धं मुखाम्बुजमुदीक्षितुमीक्षणाभ्याम् ॥
(कृष्णकर्णामृत श्लोक ३२)

हे प्यारे, मुरलीविहारी! तुम्हारा शैशवावस्थाका मनोहर माधुर्य त्रिभुवननिख्यात है। संसारमें उसकी मधुरिमा सर्वत्र व्याप्त है, उससे प्यारी वस्तु कोई विश्वमें है ही नहीं और मेरी चपलता, चञ्चलता, उच्छृङ्खलता तुमपर विदित ही है। तुम ही मेरी चपलतासे पूर्णरीत्या परिचित हो। बस, मेरे और तुम्हारे सिवा तीसरा कोई उसे नहीं जानता। प्यारे! बस, एक ही अभिलाषा है, इसी अभिलाषासे अभीतक इन प्राणोंको धारण किये हुए हूँ। वह यह कि जिस मनोहर मुखकमलको देखकर व्रजवधू भूली-सी, भटकी-सी, सर्वस्व गँवाई-सी बन जाती हैं, उसी कमलमुखको अपनी दोनों आँखें फाड़-फाड़कर एकान्तमें देखना चाहती हूँ। हृदयरमण! क्या कभी देख सकूँगी? प्राणवल्लभ! क्या कभी ऐसा सुयोग प्राप्त हो सकेगा? बस, इसी प्रकार प्रेम प्रलाप करते हुए प्रभु जगन्नाथवल्लभ नामक उद्यानमें परिभ्रमण कर रहे थे। वे प्रत्येक वृक्षको आलिङ्गन करते, उससे अपने प्यारेका पता पूछते और फिर आगे बढ़ जाते। प्रेमसे लताओंकी भाँति वृक्षोंसे लिपट जाते, कभी मूर्छित होकर गिर पड़ते, कभी फिर उठकर उसी ओर दौड़ने लगते। उसी समय वे क्या देखते हैं कि अशोकके वृक्षके नीचे खड़े होकर वे ही मुरलीमनोहर अपनी मदमाती मुरलीको मन्द-मन्द मुसकानके साथ बजा रहे हैं। वे मुरलीमें ही कोई सुन्दर-सा मनोहारी गीत गा रहे हैं, न उनके साथ कोई सखा है, न पासमें कोई गोपिका ही। अकेले ही वे अपने स्वाभाविक टेढ़ेपनसे ललित त्रिभङ्गी गतिसे खड़े हैं।

बाँसकी वह पूर्वजन्मकी परम तपस्विनी मुरली अरुण रंगके अधरोंका धीरे-धीरे अमृत पान कर रही है। महाप्रभु उस मनोहर मूर्तिको देखकर उसीकी ओर दौड़े। प्यारेको आलिङ्गनदान देनेके लिये वे शीघ्रतासे बढ़े। हा सर्वनाश! प्रलय हो गयी! प्यारा तो गायब! अब उसका कुछ भी पता नहीं। महाप्रभु वहीं मूर्छित होकर गिर पड़े!

थोड़ी देरमें वे इधर-उधर सूँ-सूँ करके कुछ सूँघने लगे। उन्हें श्रीकृष्णके शरीरकी दिव्य गन्ध आ रही थी। गन्ध तो आ रही थी, किन्तु श्रीकृष्ण दिखायी नहीं देते थे। इसीलिये उसी गन्धके सहारे-सहारे वे श्रीकृष्णकी खोज करनेके लिये फिर चल पड़े। अहा! प्यारेके शरीरकी दिव्य गन्ध कैसी मनोहारिणी होगी, इसे तो कोई रतिसुखकी प्रवीणा नायिका ही समझ सकती है, हम अरसिकोंका उसमें प्रवेश कहाँ! हाय रे! प्यारेके शरीरकी दिव्य गन्ध घोर मादकता पैदा करनेवाली है, जैसे मद्यपीकी आँखोंसे ओझल बहुत ही उत्तम गन्धयुक्त सुरा रक्खी हो, किन्तु वह उसे दीखती न हो। जिस प्रकार वह उस आसवके लिये विकल होकर तड़पता है, उसी प्रकार प्रभु उस गन्धको सूँघकर तड़प रहे थे। उस गन्धकी उन्मादताका वर्णन कविराज गोस्वामीके शब्दोंमें सुनिये—

सेहे गन्ध वश नासा, सदा करे गन्धेर आशा।
कभू पाय कभू ना पाय॥
पाइले पिया पेट भरे, पिड पिड तबू करे।
ना पाइल तृष्णाय मरिजाय॥
मदन मोहन नाट, पसारि चाँदेर हाट।
जगन्नारी-ग्राहक लोभाय॥
बिना-मूल्ये देय गन्ध, गन्ध दिया करे अन्ध।
घर याइते पथ नाहि पाय॥

एइ मत गौरहरि, गन्धे कैल मन चुरि।
भृङ्ग प्राय–इति उति धाय॥
जाय वृक्ष लता पाशे, कृष्ण–स्फुरे सेइ आशे।
गन्ध न पाय, गन्ध मात्र पाय॥

श्रीकृष्णके अङ्गकी उस दिव्य गन्धके वशमें नासिका हो गयी है, वह सदा उसी गन्धकी आशा करती रहती है। कभी तो उस गन्धको पा जाती है और कभी नहीं भी पाती है। जब पा लेती है तब पेट भरकर खूब पीती है और फिर भी 'पीऊँ और पीऊँ' इसी प्रकार कहती रहती है। नहीं पाती है तो प्याससे मर जाती है। इस नटवर मदनमोहनने रूपकी हाट लगा रखी है। ग्राहकरूपी जो जगत्की स्त्रियाँ हैं उन्हें लुभाता है। यह ऐसा विचित्र व्यापारी है कि बिना ही मूल्य लिये हुए वैसे ही उस दिव्य गन्धको दे देता है और गन्धको देकर अन्धा बना देता है। जिससे वे बेचारी स्त्रियाँ अपने घरका रास्ता भूल जाती हैं। इस प्रकार गन्धके द्वारा जिनका मन चुराया गया है, ऐसे गौरहरि भ्रमरकी भाँति इधर-उधर दौड़ रहे थे। वे वृक्ष और लताओंके समीप जाते हैं कि कहीं श्रीकृष्ण मिल जायँ किन्तु वहाँ श्रीकृष्ण नहीं मिलते, केवल उनके शरीरकी दिव्य गन्ध ही मिलती है।

इस प्रकार श्रीकृष्णकी गन्धके पीछे घूमते-घूमते सम्पूर्ण रात्रि व्यतीत हो गयी। निशा अपने प्राणनाथके वियोगदुःखके स्मरणसे कुछ म्लान-सी हो गयी। उसके मुखका तेज फीका पड़ने लगा। भगवान् भुवनभास्करके आगमनके भयसे निशानाथ भी धीरे-धीरे अस्ताचलकी ओर जाने लगे। स्वरूप गोस्वामी और राय रामानन्द प्रभुको उनके निवासस्थानपर ले गये।

प्रभुकी सभी बातें कहते, उनकी दशा बताते और सभीका कुशल-क्षेम लेकर लौट आते। शचीमाताके लिये प्रभु प्रतिवर्ष जगन्नाथजीका प्रसाद भेजते और भाँति-भाँतिके आश्वासनोंद्वारा माताको प्रेम-सन्देश पठाते।

प्रभुके सन्देशको कविराज गोस्वामीके शब्दोंमें सुनिये—

तोमार सेवा छाँड़ि आमि करिनूँ सन्यास।
'बाउल' हञ्या आमि कैलूँ धर्म नाश॥
एइ अपराध तुमि ना लइह आमार।
तोमार अधीन आमि-पुत्र से तोमार॥
नीलाचले आछि आमि तोमार आज्ञाते।
यावत् जीव तावत् आमि नारिब छाड़िते॥

अर्थात् हे माता! मैंने तुम्हारी सेवा छोड़कर पागल होकर संन्यास धारण कर लिया है, यह मैंने धर्मके विरुद्ध आचरण किया है, मेरे इस अपराधको तुम चित्तमें मत लाना। मैं अब भी तुम्हारे अधीन ही हूँ। निमाई अब भी तुम्हारा पुराना ही पुत्र है। नीलाचलमें मैं तुम्हारी ही आज्ञासे रह रहा हूँ और जबतक जीऊँगा तबतक नीलाचलको नहीं छोड़ूँगा। इस प्रकार प्रतिवर्ष वे प्रेम-सन्देश और प्रसाद भेजते।

एक बार जगदानन्द पण्डित प्रभुकी आज्ञासे नवद्वीप गये। वहाँ जाकर उन्होंने शचीमाताको प्रसाद दिया, प्रभुका कुशल-समाचार बताया और उनका प्रेम-सन्देश भी कह सुनाया। निमाईको ही सर्वस्व समझनेवाली माँ अपने प्यारे पुत्रकी ऐसी दयनीय दशा सुनकर फूट-फूटकर रोने लगी। उसके अतिक्षीण शरीरमें अब अधिक दिनोंतक जीवित रहनेकी सामर्थ्य नहीं रही थी। जो कुछ थोड़ी-बहुत सामर्थ्य थी भी सो निमाईकी ऐसी भयङ्कर दशा सुनकर उसके शोकके कारण विलीन हो गयी। माता अब अपने जीवनसे निराश हो बैठी, निमाईका

श्रीअद्वैताचार्यजीकी पहेली

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः।
भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः॥*

(श्रीमद्भागवत ६। ३। २२)

मातृभक्त श्रीगौराङ्ग उन्मादावस्थामें भी अपनी स्नेहमयी जननीको एकदम नहीं भूले थे। जब वे अन्तर्दशासे कभी-कभी बाह्य दशामें आ जाते तो अपने प्रिय भक्तोंकी और प्रेममयी माताकी कुशल-क्षेम पूछते और उनके समाचार जाननेके निमित्त जगदानन्दजीको प्रतिवर्ष गौड़ भेजते थे। जगदानन्दजी गौड़में जाकर सभी भक्तोंसे मिलते, उनसे

* इस मनुष्यलोकमें मनुष्यके शरीर धारण करनेका केवल इतना ही प्रयोजन है कि वह भगवान् वासुदेवके प्रति भक्ति करे और उनके सुमधुर नामोंका सदा अपनी जिह्वासे उच्चारण करता रहे।

प्रभुकी सभी बातें कहते, उनकी दशा बताते और सभीका कुशल-क्षेम लेकर लौट आते। शचीमाताके लिये प्रभु प्रतिवर्ष जगन्नाथजीका प्रसाद भेजते और भाँति-भाँतिके आश्वासनोंद्वारा माताको प्रेम-सन्देश पठाते।

प्रभुके सन्देशको कविराज गोस्वामीके शब्दोंमें सुनिये—

तोमार सेवा छाँड़ि आमि करिनूँ सन्यास।
'बाउल' हञा आमि कैलूँ धर्म नाश॥
एइ अपराध तुमि ना लइह आमार।
तोमार अधीन आमि—पुत्र से तोमार॥
नीलाचले आछि आमि तोमार आज्ञाते।
यावत् जीव तावत् आमि नारिब छाड़िते॥

अर्थात् हे माता! मैंने तुम्हारी सेवा छोड़कर पागल होकर संन्यास धारण कर लिया है, यह मैंने धर्मके विरुद्ध आचरण किया है, मेरे इस अपराधको तुम चित्तमें मत लाना। मैं अब भी तुम्हारे अधीन ही हूँ। निमाई अब भी तुम्हारा पुराना ही पुत्र है। नीलाचलमें मैं तुम्हारी ही आज्ञासे रह रहा हूँ और जबतक जीऊँगा तबतक नीलाचलको नहीं छोड़ूँगा। इस प्रकार प्रतिवर्ष वे प्रेम-सन्देश और प्रसाद भेजते।

एक बार जगदानन्द पण्डित प्रभुकी आज्ञासे नवद्वीप गये। वहाँ जाकर उन्होंने शचीमाताको प्रसाद दिया, प्रभुका कुशल-समाचार बताया और उनका प्रेम-सन्देश भी कह सुनाया। निमाईको ही सर्वस्व समझनेवाली माँ अपने प्यारे पुत्रकी ऐसी दयनीय दशा सुनकर फूट-फूटकर रोने लगी। उसके अतिक्षीण शरीरमें अब अधिक दिनोंतक जीवित रहनेकी सामर्थ्य नहीं रही थी। जो कुछ थोड़ी-बहुत सामर्थ्य थी भी सो निमाईकी ऐसी भयङ्कर दशा सुनकर उसके शोकके कारण विलीन हो गयी। माता अब अपने जीवनसे निराश हो बैठी, निमाईका

चन्द्रवदन अब जीवनमें फिर देखनेको न मिल सकेगा, इस बातसे माताकी निराशा और भी बढ़ गयी। वह अब इस विषमय जीवन-भारको बहुत दिनोंतक ढोते रहनेमें असमर्थ-सी हो गयी। माताने पुत्रको रोते-रोते आशीर्वाद पठाया और जगदानन्दजीको प्रेमपूर्वक विदा किया। जगदानन्दजी वहाँसे अन्यान्य भक्तोंके यहाँ होते हुए श्रीअद्वैताचार्यजीके घर गये। आचार्यने उनका अत्यधिक स्वागत-सत्कार किया और प्रभुके सभी समाचार पूछे। आचार्यका शरीर भी अब बहुत वृद्ध हो गया था। उनकी अवस्था ९० से ऊपर पहुँच गयी थी। खाल लटक गयी थी, अब वे घरसे बाहर बहुत ही कम निकलते थे। जगदानन्दको देखकर मानो फिर उनके शरीरमें नवयौवनका सञ्चार हो गया और वे एक-एक करके सभी विरक्त भक्तोंका समाचार पूछने लगे। जगदानन्दजी दो-चार दिन आचार्यके यहाँ रहे। जब उन्होंने प्रभुके पास जानेके लिये अत्यधिक आग्रह किया तब आचार्यने उन्हें जानेकी आज्ञा दे दी और प्रभुके लिये एक पहेलीयुक्त पत्र भी लिखकर दिया। जगदानन्दजी उस पत्रको लेकर प्रभुके पास पहुँचे।

महाप्रभु जब बाह्य दशामें आये, तब उन्होंने सभी भक्तोंके कुशल-समाचार पूछे। जगदानन्दजीने सबका कुशल-क्षेम बताकर अन्तमें अद्वैताचार्यकी वह पहेलीवाली पत्री दी। प्रभुकी आज्ञासे वे सुनाने लगे। प्रभुको कोटि-कोटि प्रणाम कर लेनेके अनन्तर उसमें यह पहेली थी—

बाउलके कहिह—लोक हइल बाउल।
बाउलके कहिह—हाटे ना बिकाय चाउल॥
बाउलके कहिह—काजे नाहिक आउल।
बाउलके कहिह—इहा कहिया छे बाउल॥*

---

* श्रीचैतन्य प्राणियोंके जीवनके आधार चावलरूपी हरिनामके

सभी समीपमें बैठे हुए भक्त इस विचित्र पहेलीको सुनकर हँसने लगे। महाप्रभु मन-ही-मन इसका मर्म समझकर कुछ मन्द-मन्द मुसकराये और जैसी उनकी आज्ञा, इतना कहकर चुप हो गये। प्रभुके बाहरी प्राण श्रीस्वरूपगोस्वामीको प्रभुकी मुसकराहटमें कुछ विचित्रता प्रतीत हुई। इसलिये दीनताके साथ पूछने लगे—'प्रभो! मैं इस विचित्र पहेलीका अर्थ समझना चाहता हूँ। आचार्य अद्वैत रायने यह कैसी अनोखी पहेली भेजी है। आप इसे सुनकर क्यों मुसकराये।'

प्रभुने धीरे-धीरे गम्भीरताके स्वरमें कहा—'अद्वैताचार्य कोई साधारण आचार्य तो हैं ही नहीं। वे नामके ही आचार्य नहीं हैं, किन्तु आचार्यपनेके सभी कार्य भलीभाँति जानते हैं। उन्हें शास्त्रीय विधिके अनुसार पूजापाठ करनेकी सभी विधि मालूम है। पूजामें पहले तो बड़े सत्कारके साथ देवताओंको बुलाया जाता है, फिर उनकी षोडशोपचार रीतिसे विधिवत् पूजा की जाती है, यथास्थान पधराया जाता है। जिस माङ्गलिक कार्यके निमित्त उनका आह्वान किया जाता है और वह कार्य जब समाप्त हो जाता है,

---

व्यापारी हैं। अद्वैताचार्य उनके प्रधान आढ़तिया हैं। जैसा ही पागल व्यापारी है वैसा ही पागल आढ़तिया भी है और पागलोंका-सा ही प्रलापपूर्ण पत्र भी पठाया है। पागलोंके सिवा इसके मर्मको कोई समझ ही क्या सकता है। पागल आढ़तिया कहता है—'उस बावले व्यापारीसे कहना। सब लोगोंके कोठी-कुठिला हरिनामरूपी चावलोंसे भर गये। अब इस बाजारमें इस सस्ते मालकी बिक्री नहीं रही। अब यह व्यापार साधारण हो गया। तुम-जैसे उत्तम श्रेणीके व्यापारीके योग्य अब यह व्यापार नहीं है। इसलिये अब इस हाटको बन्द कर दो। बावले व्यापारीको बावले आढ़तियाने यह सन्देश भिजवाया है।'

तब देवताओंसे हाथ जोड़कर कहते हैं—'गच्छ गच्छ परं स्थानम्' अर्थात् 'अब अपने परम स्थानको पधारिये !' सम्भवतया यही उनका अभिप्राय हो, वे ज्ञानी पण्डित हैं, उनके अर्थको ठीक-ठीक समझ ही कौन सकता है ।' इस बातको सुनकर स्वरूपगोस्वामी कुछ अन्यमनस्क-से हो गये। सभीको पता चल गया कि महाप्रभु अब शीघ्र ही लीला-संवरण करेंगे। इस बातके स्मरणसे सभीका हृदय फटने-सा लगा । उसी दिनसे प्रभुकी उन्मादावस्था और भी अधिक बढ़ गयी । वे रात-दिन उसी अन्तर्दशामें निमग्न रहने लगे । प्रतिक्षण उनकी दशा लोक-बाह्य-सी ही बनी रहती थी । कविराज गोस्वामीके शब्दोंमें सुनिये—

स्तम्भ, कम्प, प्रस्वेद, वैवर्ण, अश्रुस्वर-भेद ।
देह हैल पुलके व्यापित ॥
हासे, कान्दे, नाचे, गाय, उठि इति-उति धाय ।
क्षणे भूमे पड़िया मूर्छिते ॥

'शरीर सन्न पड़ जाता है, कँपकँपी छूटने लगती है। शरीरसे पसीना बहने लगता है, मुख म्लान हो जाता है, आँखोंसे अश्रुधारा बहने लगती है । गला भर आता है, शब्द ठीक-ठीक उच्चारण नहीं होते हैं। देह रोमाञ्चित हो जाती है । हँसते हैं, जोरोंसे रुदन करते हैं, नाचते हैं, गाते हैं, उट-उठकर इधर-उधर भागने लगते हैं, क्षणभरमें मूर्छित होकर भूमिपर गिर पड़ते हैं ।' प्यारे ! पगले, दयालु चैतन्य ! क्या इस पागलपनमें हमारा कुछ भी साझा नहीं है। हे दीनवत्सल ! इस पागलपनमेंसे यत्किञ्चित् भी हमें मिल जाय तो यह सार-हीन जीवन सार्थक बन जाय । मेरे गौर ! उस मादक मदिराका एक प्याला मुझको भी क्यों नहीं पिला देता ? हे मेरे पागलशिरोमणि ! तेरे चरणोंमें मैं कोटि-कोटि नमस्कार करता हूँ ।

समुद्रपतन और मृत्युदशा

शरज्ज्योत्स्नासिन्धोरवकलनया जातयमुना-
भ्रमाद्धावन् योऽस्मिन् हरिविरहतापार्णव इव ।
निमग्नो मूर्च्छितः पयसि निवसन् रात्रिमखिलां
प्रभाते प्राप्तः स्वैरचतु स शचीसूनुरिह नः ॥*

(श्रीचै० चरिता० अ० ली० १८।१)

सर्व शास्त्रोंमें श्रीमद्भागवत श्रेष्ठ है। श्रीमद्भागवतमें भी दशम स्कन्ध सर्वश्रेष्ठ है, दशम स्कन्धमें भी पूर्वार्ध श्रेष्ठ है और पूर्वार्धमें भी रासपञ्चाध्यायी सर्वश्रेष्ठ है और रासपञ्चाध्यायीमें भी 'गोपी-गीत' अतुलनीय

---

* जो शरद्ज्योत्स्नापूर्ण रात्रिमें समुद्रको देखकर यमुनाके भ्रमसे हरिविरहरूपी तापार्णवमें निमग्न हुए जलमें कूद पड़े और समस्त रात्रिभर वहीं मूर्छित पड़े रहे। प्रातःकाल स्वरूपादि अपने अन्तरङ्ग भक्तोंको जो प्राप्त हुए वे ही शचीनन्दन श्रीगौराङ्ग इस संसारमें हमारी रक्षा करें।

है। उसकी तुलना किसीसे की ही नहीं जा सकती, वह अनुपमेय है। उसे उपमा भी दें तो किसकी दें, उससे श्रेष्ठ या उसके समान संसारमें कोई गीत है ही नहीं। महाप्रभुको भी रासपञ्चाध्यायी ही अत्यन्त प्रिय थी। वे सदा रासपञ्चाध्यायीके ही श्लोकोंको सुना करते थे और भावावेशमें उन्हीं भावोंका अनुकरण भी किया करते थे।

एक दिन राय रामानन्दजीने श्रीमद्भागवतके तैंतीसवें अध्यायमेंसे भगवान्‌की कालिन्दीकूलकी जल-क्रीड़ाकी कथा सुनायी। प्रभुको दिनभर यही लीला स्फुरण होती रही। दिन बीता, रात्रि आयी, प्रभुकी विरहवेदना भी बढ़ने लगी। वे आज अपनेको सँभालनेमें एकदम असमर्थ हो गये। पता नहीं किस प्रकार वे भक्तोंकी दृष्टि बचाकर समुद्रके किनारे-किनारे आईटोटाकी ओर चले गये। वहाँ विशाल सागरकी नीली-नीली तरंगें उठकर संसारको हृदयकी विशालता, संसारकी अनित्यता और प्रेमकी तन्मयताकी शिक्षा दे रही थीं। प्रेमावतार गौराङ्गके हृदयसे एक सुमधुर संगीत स्वतः ही उठ रहा था। महाप्रभु उस संगीतके स्वरको श्रवण करते-करते पागल हुए बिना सोचे-विचारे ही समुद्रकी ओर बढ़ रहे थे। अहा! समुद्रके किनारेके सुन्दर-सुन्दर वृक्ष अपनी शरत्कालीन शोभासे सागरकी सुषमाको और भी अधिक शक्तिशालिनी बना रहे थे। शरद्‌की सुहावनी शर्वरी थी, अपने प्रिय पुत्र चन्द्रमाकी श्रीवृद्धि और पूर्ण ऐश्वर्यसे प्रसन्न होकर पिता सागर आनन्दसे उमड़ रहे थे। महाप्रभु उसमें कृष्णाङ्ग-स्पर्शसे पुलकित और आनन्दित हुई कालिन्दीका दर्शन कर रहे थे। उन्हें समुद्रकी एक-दम विस्मृति हो गयी, वे कालिन्दीमें गोपिकाओंके साथ क्रीड़ा करते हुए श्रीकृष्णके प्रत्यक्ष दर्शन करने लगे। बस, फिर क्या था, आप उस क्रीड़ा-सुखसे क्यों वञ्चित रहते, जोरोंसे हुङ्कार करते हुए अथाह सागरके जलमें कूद पड़े। और अपने प्यारेके साथ जलविहारका आनन्द लेने लगे। इसी प्रकार जलमें डूबते और उछलते हुए उन्हें सम्पूर्ण रात्रि बीत गयी।

इधर प्रभुको स्थानपर न देखकर भक्तोंको सन्देह हुआ कि प्रभु कहाँ चले गये। स्वरूपगोस्वामी गोविन्द, जगदानन्द, वक्रेश्वर, रघुनाथदास, शङ्कर आदि सभी भक्तोंको साथ लेकर व्याकुलताके साथ प्रभुकी खोजमें चले। श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरके सिंहद्वारसे लेकर उन्होंने तिल-तिलभर जगहको खोज डाला। सभीके साथ वे जगन्नाथ-वल्लभ नामक उद्यानमें गये, वहाँ भी प्रभुका कोई पता नहीं। वहाँसे निराश होकर वे गुण्टिचा-मन्दिरमें गये। सुन्दराचलमें उन्होंने इन्द्रद्युम्न सरोवर, समीपके सभी बगीचे तथा मन्दिर खोज डाले। सभीको परम आश्चर्य हुआ कि प्रभु गये भी तो कहाँ गये। इस प्रकार उन्हें जब कहीं भी प्रभुका पता नहीं चला तब वे निराश होकर फिर पुरीमें लौट आये। इस प्रकार प्रभुकी खोज करते-करते उन्हें सम्पूर्ण रात्रि बीत गयी। प्रातः-कालके समय स्वरूपगोस्वामीने कहा—'अब चलो, समुद्रके किनारे प्रभु-की खोज करें, वहाँ प्रभुका अवश्य ही पता लग जायगा।' यह कहकर वे भक्तोंको साथ लेकर समुद्रके किनारे-किनारे चल पड़े।

इधर महाप्रभु रात्रिभर जलमें उछलते और डूबते रहे। उसी समय एक मल्लाह वहाँ जाल डालकर मछली मार रहा था, महाप्रभुका मृत्यु-अवस्थाको प्राप्त वह विकृत शरीर उस मल्लाहके जालमें फँस गया। उसने बड़ा भारी मच्छ समझकर उसे किनारेपर खींच लिया। उसने जब देखा कि यह मच्छ नहीं कोई मुर्दा है, तो उठाकर प्रभुको किनारे-पर फेंक दिया। बस, महाप्रभुके अङ्गका स्पर्श करना था कि वह मल्लाह आनन्दमें उन्मत्त होकर नृत्य करने लगा। प्रभुके श्रीअङ्गके स्पर्शमात्रसे ही उसके शरीरमें सभी सात्त्विक भाव आप-से-आप ही उदित हो उठे। वह कभी तो प्रेममें विह्वल होकर हँसने लगता, कभी रोने लगता, कभी गाने लगता और कभी नाचने लगता। वह भयभीत हुआ वहाँसे दौड़ने लगा। उसे भ्रम हो गया कि मेरे शरीरमें भूतने प्रवेश किया है, इसी भयसे

वह भागता-भागता आ रहा था कि इतनेमें ये भक्त भी वहाँ पहुँच गये। उसकी ऐसी दशा देखकर स्वरूपगोस्वामीने उससे पूछा—'क्यों भाई! तुमने यहाँ किसी आदमीको देखा है, तुम इतने डर क्यों रहे हो। अपने भयका कारण तो हमें बताओ।'

भयसे काँपते हुए उस मल्लाहने कहा—'महाराज! आदमी तो मैंने यहाँ कोई नहीं देखा। मैं सदाकी भाँति मछली मार रहा था कि एक मुर्दा मेरे जालमें फँस आया। उसके अङ्गमें भूत था, वही मेरे अङ्गमें लिपट गया है। इसी भयसे मैं भूत उतरवानेके लिये ओझाके पास जा रहा हूँ। आपलोग इधर न जायँ। वह बड़ा ही भयङ्कर मुर्दा है, ऐसा विचित्र मुर्दा तो मैंने आजतक कभी देखा ही नहीं।' उस समय महाप्रभुका मृत्युदशामें प्राप्त शरीर बड़ा ही भयानक बन गया था। कविराज गोस्वामीने मल्लाहके मुखसे प्रभुके शरीरका जो वर्णन कराया है, उसे उन्हींके शब्दोंमें सुनिये—

जालिया कहे—इहाँ एक मनुष्य ना देखिल।
जाल बाहिते एक मृत मोर जाले आइल॥
बड़ मत्स्य बले, आमि उठाइलुँ यतने।
मृतक देखिते मोर भय हैल मने॥
जाल खसाइते तार अङ्ग-स्पर्श हइल।
स्पर्शमात्रे सेइ भूत हृदये पशिल॥
भये कम्पहैल, मोर नेत्रे बहे जल।
गद्‌गद् वाणी मोर उठिल सकल॥
कि वा ब्रह्मदैत्य, कि वा भूत, कहने ना जाय।
दर्शनमात्रे मनुष्येर पशे सेइ काय॥
शरीर दीघल तार—हाथ पाँच सात।
एक हस्त पद तार, तिन तिन हात॥

अस्थि-सन्धि छूटि चर्म करे नड़-बड़े।
ताहा देखि, प्राण कार नाहि रहे धरे॥
महा रूप धरि, रहे उत्तान-नयन।
कभू गों-गों करे, कभू देखि अचेतन॥

स्वरूपगोस्वामीके पूछनेपर जालिया (मल्लाह) कहने लगा—मनुष्य तो मैंने यहाँ कोई देखा नहीं है। जाल डालते समय एक मृतक मनुष्य मेरे जालमें आ गया। मैंने उसे बड़ा मत्स्य जानकर उठाया। जब मैंने देखा कि यह तो मुर्दा है, तब मेरे मनमें भय हुआ। जालसे निकालते समय उसके अङ्गसे मेरे अङ्गका स्पर्श हो गया। स्पर्शमात्रसे ही वह भूत मेरे शरीरमें प्रवेश कर गया। भयके कारण मेरे शरीरमें कँप-कँपी होने लगी, नेत्रोंसे जल बहने लगा और मेरी वाणी गद्गद हो गयी। या तो वह ब्रह्मदैत्य है या भूत है, इस बातको मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकता। वह दर्शनमात्रसे ही मनुष्यके शरीरमें प्रवेश कर जाता है। उसका शरीर पाँच-सात हाथ लंबा है। उसके एक-एक हाथ पाँव तीन-तीन हाथ लंबे हैं। उसके हड्डियोंकी सन्धियाँ खुल गयी हैं। उसके शरीरके ऊपरका चर्म लुजुर-बुजुर-सा करता है। उसे देखकर किसीके भी प्राण नहीं रह सकते। बड़ा ही विचित्र रूप धारण किये है, दोनों नेत्र चढ़े हुए हैं। कभी तो गों-गों शब्द करता है और कभी फिर अचेतन हो जाता है।

इस बातको मल्लाहके मुखसे सुनकर स्वरूपगोस्वामी सब कुछ समझ गये कि वह महाप्रभुका ही शरीर होगा। उनके अङ्ग-स्पर्शसे ही इसकी ऐसी दशा हो गयी है। भयके कारण इसे पता नहीं कि यह प्रेमकी अवस्था है। यह सोचकर वे कहने लगे—'तुम ओझाके पास क्यों जाते हो, हम बहुत अच्छी ओझाई जानते हैं। कैसा भी भूत क्यों

न हो, हमने जहाँ मन्त्र पढ़ा नहीं बस, वहीं उसी क्षण वह भूत भागता ही हुआ दिखायी देता है। फिर वह क्षणभर भी नहीं ठहरता।' ऐसा कहकर स्वरूपगोस्वामीने वैसे ही झूट-मूँठ कुछ पढ़कर अपने हाथको उसके मस्तकपर छुआया और जोरोंसे उसके गालपर तीन तमाचे मारे। उसके ऊपर भूत थोड़े ही था। उसे भूतका भ्रम था, विश्वासके कारण वह भय दूर हो गया।

तब स्वरूपगोस्वामीने उससे कहा—'तू जिन्हें भूत समझ रहा है, वे महाप्रभु चैतन्यदेव हैं, प्रेमके कारण उनकी ऐसी दशा हो जाती है। तू उन्हें हमको बता कहाँ हैं। हम उन्हींकी खोजमें तो आये हैं।'

इस बातको सुनकर वह मल्लाह प्रसन्न होकर सभी भक्तोंको साथ लेकर प्रभुके पास पहुँचा। भक्तोंने देखा, सुवर्णके समान प्रभुका शरीर चाँदीके चूरेके समान समुद्रकी बालुकामें पड़ा हुआ है, आँखें ऊपरको चढ़ी हुई हैं, पेट फूला हुआ है, मुँहमेंसे झाग निकल रहे हैं। बिना किसी प्रकारकी चेष्टा किये हुए उनका शरीर गीली बालुकासे सना हुआ निश्चेष्ट पड़ा हुआ है। सभी भक्त प्रभुको घेरकर बैठ गये।

हम संसारी लोग तो मृत्युको ही अन्तिम दशा समझते हैं, इसलिये संसारी दृष्टिसे प्रभुके शरीरका यहीं अन्त हो गया। फिर उसे चैतन्यता प्राप्त नहीं हुई। किन्तु रागानुगामी भक्त तो मृत्युके पश्चात् भी विरहिणीको चैतन्यता लाभ कराते हैं। उनके मतमें मृत्यु ही अन्तिम दशा नहीं है। इस प्रसङ्गमें हम बंगला भाषाके प्रसिद्ध पदकर्ता श्री-गोविन्ददासजीका एक पद उद्धृत करते हैं। इससे पाठकोंको पता चल जायगा कि श्रीकृष्णनामश्रवणसे मृत्युदशाको प्राप्त हुई भी राधिकाजी फिरसे चैतन्यता प्राप्त करके बातें कहने लगीं।

कुञ्ज भवने धनी। तुया गुण गणि गणि।
अतिशय दुरबली भेल॥
दशमीक पहिल, दशा हेरि सहचरी।
घरे सङ्गे बाहिर केल॥
शुन माधव कि बलब तोय।
गोकुल तरुणी, निचय मरण जानि।
राइ राइ करि रोय॥
तहि एक सुचतुरी, ताक श्रवण भरि।
पुन पुन कहे तुया नाम॥
बहु क्षणे सुन्दरी, पाइ परान कोरि।
गद्गद् कहे श्याम नाम॥
नामक आछु गुणे, शुनिले त्रिभुवने।
मृतजने पुन कहे बात॥
गोविन्ददास कह, इह सब आन नह।
याइ देखह मझु साथ॥

श्रीकृष्णसे एक सखी श्रीराधिकाजीकी दशाका वर्णन कर रही है। सखी कहती है—हे श्यामसुन्दर! राधिकाजी कुञ्जभवनमें तुम्हारे नामको दिन-रात रटते-रटते अत्यन्त ही दुबली हो गयी हैं। जब उनकी मृत्युके समीपकी दशा मैंने देखी तब उन्हें उस कुञ्जकुटीरसे बाहर कर लिया। प्यारे माधव! अब तुमसे क्या कहूँ, बाहर आनेपर उसकी मृत्यु हो गयी, सभी सखियाँ उसकी मृत्युदशाको देखकर रुदन करने लगीं। उनमें एक चतुर सखी थी, वह उसके कानमें तुम्हारा नाम बार-बार कहने लगी।

बहुत देरके अनन्तर उस सुन्दरीके शरीरमें कुछ-कुछ प्राणोंका सञ्चार होने लगा। थोड़ी देरमें वह गद्गद कण्ठसे 'श्याम' ऐसा कहने लगी। तुम्हारे नामका त्रिभुवनमें ऐसा गुण सुना गया है कि मृत्यु-दशाको प्राप्त हुआ प्राणी भी पुनः बात कहने लगता है। सखी कहती है—'तुम इस बातको झूठ मत समझना। यदि तुम्हें इस बातका विश्वास न हो, तो मेरे साथ चलकर उसे देख आओ।' यह पद गोविन्ददास कवि-द्वारा कहा गया है।'

इसी प्रकार भक्तोंने भी प्रभुके कानोंमें हरिनाम सुनाकर उन्हें फिर जाग्रत किया। वे अर्धबाह्यदशामें आकर कालिन्दीमें होनेवाली जल-केलिका वर्णन करने लगे। 'वह साँवला सभी सखियोंको साथ लेकर यमुनाजीके सुन्दर शीतल जलमें घुसा। सखियोंके साथ वह नाना भाँति-की जलक्रीड़ा करने लगा। कभी किसीके शरीरको भिगोता, कभी दस-बीसोंको साथ लेकर उनके साथ दिव्य-दिव्य लीलाओंका अभिनय करता। मैं भी उस प्यारेकी क्रीड़ामें सम्मिलित हुई। वह क्रीड़ा बड़ी ही सुखकर थी।' इस प्रकार कहते-कहते प्रभु चारों ओर देखकर स्वरूपगोस्वामीसे पूछने लगे—'मैं यहाँ कहाँ आ गया? वृन्दावनसे मुझे यहाँ कौन ले आया?' तब स्वरूपगोस्वामीने सभी समाचार सुनाये और वे उन्हें स्नान कराकर भक्तोंके साथ वासस्थानपर ले गये।

महाप्रभुका अदर्शन अथवा लीलासंवरण

अद्यैव हसितं गीतं पठितं यैः शरीरिभिः।
अद्यैव ते न दृश्यन्ते कष्टं कालस्य चेष्टितम्॥*

(सु० र० भां० ३९० । ३९१)

महाभारतमें स्थान-स्थानपर क्षात्रधर्मकी निन्दा की गयी। युद्धमें खड्ग लेकर जो क्षत्रिय अपने भाई-बन्धुओं और सगे-सम्बन्धियोंका बात-की-बातमें वध कर सकता है, ऐसे कठोर धर्मको धर्मराज युधिष्ठिर-ऐसे महात्माने परम निन्द्य बताकर भी उसमें प्रवृत्त होनेके लिये अपनी विवशता बतलायी है। किन्तु क्षात्रधर्मसे भी कठोर और क्रूर कर्म हम-जैसे क्षुद्र लेखकोंका है, जिनके हाथमें वज्रके समान बलपूर्वक लोहेकी लेखनी

---

* जो प्राणी आज ही जिस शरीरसे हँस रहे थे, सुन्दर-सुन्दर पद गा रहे थे, उत्तम-उत्तम श्लोकोंका पाठ कर रहे थे, वे ही न जाने आज ही कहाँ अदृश्य हो गये। अब उनका पाञ्चभौतिक शरीर दीखता ही नहीं। हा! कराल कालकी कैसी कठोर और कष्टप्रद क्रीड़ा है। उसकी ऐसी चेष्टाको बार-बार धिक्कार है।

दे दी जाती है और कहा जाता है कि उस महापुरुषकी अदर्शन-लीला लिखो! हाय! कितना कठोर कर्म है, हृदयको हिला देनेवाले इस प्रसङ्गका वर्णन हमसे क्यों कराया जाता है? कलतक जिसके मुखकमलको देखकर असंख्य भावुक भक्त भक्तिभागीरथीके सुशीतल और सुखकर सलिलरूपी आनन्दमें विभोर होकर अवगाहन कर रहे थे, उनके नेत्रोंके सामनेसे वह आनन्दमय दृश्य हटा दिया जाय, यह कितना गर्हणीय काम होगा। हाय रे विधाता! तेरे सभी काम निर्दयतापूर्ण होते हैं! निर्दयी! दुनियाभरकी निर्दयताका ठेका तैंने ही ले लिया है। भला, जिनके मनोहर चन्द्रवदनको देखकर हमारा मनकुमुद खिल जाता है, उसे हमारी आँखोंसे ओझल करनेमें तुझे क्या मजा मिलता है? तेरा इसमें लाभ ही क्या है? क्यों नहीं तू सदा उसे हमारे पास ही रहने देता? किन्तु कोई दयावान् हो उससे तो कुछ कहा-सुना भी जाय, जो पहलेसे ही निर्दयी है, उससे कहना मानो अरण्यमें रोदन करना है। हाय रे विधाता!

सचमुच लीलासंवरणके वर्णन करनेके अधिकारी तो व्यास-वाल्मीकि ही हैं। इनके अतिरिक्त जो नित्य महापुरुषोंकी लीलासंवरणका उल्लेख करते हैं, वह उनकी अनधिकार चेष्टा ही है। महाभारतमें जब अर्जुनकी त्रिभुवनविख्यात शूरता, वीरता और युद्धचातुर्यकी बातें पढ़ते हैं तो पढ़ते-पढ़ते रोंगटे खड़े हो जाते हैं। हमारी आँखोंके सामने लंबी-लंबी भुजाओंवाले गाण्डीवधारी अर्जुनकी वह विशाल और भव्य मूर्ति प्रत्यक्ष होकर नृत्य करने लगती है। उसीको जब श्रीकृष्णके अदर्शनके अनन्तर आभीर और भीलोंद्वारा लुटते देखते हैं, तो यह सब दृश्य-प्रपञ्च स्वप्नवत् प्रतीत होने लगता है। तब यह प्रत्यक्ष अनुभव होने लगता है कि यह सब उस खिलाड़ी श्रीकृष्णकी खिलवाड़ है, लीला-प्रियश्यामकी ललित लीलाके सिवा कुछ नहीं है। पाण्डवोंकी सब रिक्तता,

कष्टसहिष्णुता, शूरता, कार्यदक्षता, पटुता, श्रीकृष्णप्रियता आदि गुणोंको पढ़ते हैं तब रोंगटे खड़े हो जाते हैं, हृदय उनके लिये भर आता है, किन्तु उन्हें ही जब हिमालयमें गलते हुए देखते हैं, तो छाती फटने लगती है। सबसे पहले द्रौपदी बर्फमें गिर जाती है। उस कोमलाङ्गी अबलाको बर्फमें ही बिलबिलाती छोड़कर धर्मराज आगे बढ़ते हैं। वे मुड़कर भी उसकी ओर नहीं देखते। फिर प्यारे नकुल-सहदेव गिर पड़ते हैं। धर्मराज उसी प्रकार दृढ़तापूर्वक बर्फपर चढ़ रहे हैं। हाय, गजब हुआ। जिस भीमके पराक्रमसे यह सप्तद्वीपा वसुमती प्राप्त हुई थी वह भी बर्फमें पैर फिसलनेसे गिर पड़ा और तड़फने लगा। किन्तु युधिष्ठिर किसकी सुनते हैं, वे आगे बढ़े ही जा रहे हैं। अब वह हृदय-विदारक दृश्य आया। जिसके नामसे मनुष्य तो क्या स्वर्गके देवता थर-थर काँपते थे, वह गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन मूर्च्छित होकर गिर पड़ा और हा तात! कहकर चीत्कार मारने लगा, किन्तु धर्मराजने मुड़कर भी उनकी ओर नहीं देखा!

सचमुच स्वर्गारोहणपर्वको पढ़ते-पढ़ते रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कैसा भी वज्रहृदय क्यों न हो बिना रोये न रहेगा। जब मुझ-जैसे कठोर हृदयवालेकी आँखोंसे भी अश्रुबिन्दु निकल पड़े तब फिर सहृदय पाठकोंकी तो बात ही क्या!

इसी प्रकार जब वाल्मीकीय रामायणमें, श्रीरामकी सुकुमारता, ब्राह्मणप्रियता, गुरुभक्ति, शूरता और पितृभक्तिकी बातें पढ़ते हैं तो हृदय भर आता है। सीताजीके प्रति उनका कैसा प्रगाढ़ प्रेम था। हाय! जिस समय कामान्ध रावण जनकनन्दिनीको चुरा ले गया, तब उन मर्यादा-पुरुषोत्तमकी भी मर्यादा टूट गयी। वे अकेली जानकीके पीछे विश्व-ब्रह्माण्डको अपने अमोघ बाणके द्वारा भस्म करनेको उद्यत हो गये।

उस समय उनका प्रचण्ड क्रोध, दुर्धर्ष तेज और असहनीय रोष देखते ही बनता था। दूसरे ही क्षण वे साधारण कामियोंकी भाँति रो-रोकर लक्ष्मणसे पूछने लगते—'भैया! मैं कौन हूँ, तुम कौन हो? हम यहाँ क्यों फिर रहे हैं? सीता कौन है? हा सीते! हा प्राणवल्लभे! तू कहाँ चली गयी?' ऐसा कहते-कहते बेहोश होकर गिर पड़ते हैं। उनके अनुज ब्रह्मचारी लक्ष्मणजी बिना खाये-पीये और भूख-नींदका परित्याग किये छायाकी तरह उनके पीछे-पीछे फिरते हैं और जहाँ श्रीरामका एक बूँद पसीना गिरता है, वहीं वे अपने कलेजेको काटकर उसका एक प्याला खून निकालकर उससे उस स्वेद-बिन्दुको धोते हैं। उन्हीं लक्ष्मणका जब श्रीरामचन्द्रजीने छद्मवेशधारी यमराजके कहनेसे परित्याग कर दिया और वे श्रीरामके प्यारे भाई सुमित्रानन्दन महाराज दशरथके प्रिय पुत्र सरयू नदीमें निमग्नकर अपने प्राणोंको खोते हैं तो हृदय फटने लगता है। उससे भी अधिक करुणापूर्ण तो यह दृश्य है कि जब श्रीरामचन्द्रजी भी अपने भाइयोंके साथ उसी प्रकार सरयूमें शरीरको निमग्नकर अपने नित्यधामको पधारते हैं। सचमुच इन दोनों महाकवियोंने इन करुणापूर्ण प्रसङ्गोंको लिखकर करुणाकी एक अविच्छिन्न धारा बहा दी है जो इन ग्रन्थोंके पठन करनेवालोंके नेत्र-जलसे सदा बढ़ती ही रहती है। महाभारत और रामायणके ये ही दो स्थल मुझे अत्यन्त प्रिय हैं, इन्हीं हृदयविदारक प्रकरणोंको जब पढ़ता हूँ, तभी कुछ हृदय पसीजता है और श्रीराम-कृष्णकी लीलाओंकी कुछ-कुछ झलक-सी दिखायी देने लगती है।

यह हम-जैसे नीरस हृदयवालोंके लिये है। जो भगवत्-कृपा-पात्र हैं, जिनके हृदय कोमल हैं, जो सरस हैं, भावुक हैं, प्रेमी हैं और श्रीराम-कृष्णके अनन्य उपासक हैं, उन सबके लिये तो ये प्रकरण अत्यन्त ही असह्य हैं। उनके मतमें तो श्रीराम-कृष्णका कभी अदर्शन हुआ ही नहीं, वे नित्य

हैं, शाश्वत हैं। आत्मासे नहीं, वे शरीरसे भी अभी ज्यों-के-त्यों ही विराजमान हैं। इसीलिये श्रीमद्वाल्मीकीयके पारायणमें उत्तरकाण्ड छोड़ दिया जाता है। वैष्णवगण राजगद्दी होनेपर ही रामायणकी समाप्ति समझते हैं और वहीं रामायणका नवाह समाप्त हो जाता है। गोस्वामी तुलसीदासजीने तो इस प्रकरणको एकदम छोड़ ही दिया है। भला वे अपनी कोमल और भक्तिभरी लेखनीसे सीतामाताका परित्याग, उनका पृथ्वीमें समा जाना और गुप्तारघाटपर रामानुज लक्ष्मणका अन्तर्धान हो जाना इन हृदयविदारक प्रकरणोंको कैसे लिख सकते थे।

इसी प्रकार श्रीचैतन्यचरित्रलेखकोंने भी श्रीचैतन्यकी अन्तिम अदर्शन-लीलाका वर्णन नहीं किया है। सभी इस विषयमें मौन ही रहे हैं। हाँ 'चैतन्यमंगल' कारने कुछ थोड़ा-सा वर्णन अवश्य किया है, सो अदर्शन-की दृष्टिसे नहीं। उसमें श्रीचैतन्यदेवके सम्बन्धकी सब करामाती अलौ-किक चमत्कारपूर्ण घटनाओंका ही वर्णन किया गया है। इसीलिये उनका शरीर साधारण लोगोंकी भाँति शान्त नहीं हुआ, इसी दृष्टिसे अलौकिक घटना ही समझकर उसका वर्णन किया गया है। नहीं तो सभी वैष्णव इस दुःखदायी प्रसङ्गको सुनना नहीं चाहते। कोमल प्रकृतिके वैष्णव भला इसे सुन भी कैसे सकते हैं? इसीलिये एक भौतिक घटनाओंको ही सत्य और इतिहास माननेवाले महानुभावने लिखा है कि 'श्रीचैतन्यदेवके भक्तोंकी अन्धभक्तिने श्रीचैतन्यदेवकी मृत्युके सम्बन्धमें एकदम पर्दा डाल दिया है।' उन भोले भाईको यह पता नहीं कि चैतन्य तो नित्य हैं। भला चैतन्यकी भी कभी मृत्यु हो सकती है। जिस प्रकार अग्नि कभी नहीं बुझती .उसी प्रकार चैतन्य भी कभी नहीं मरते। अज्ञानी पुरुष ही इन्हें बुझा और मरा हुआ समझते हैं। अग्नि तो सर्वव्यापक है, विश्व उसीके ऊपर अवलम्बित है। संसारमेंसे अग्नितत्त्व निकाल दीजिये

उसी क्षण प्रलय हो जाय। शरीरके पेटकी अग्निको शान्त कर दीजिये उसी क्षण शरीर ठंडा हो जाय। सर्वव्यापक अग्निके ही सहारे यह विश्व खड़ा है। वह हमें इन चर्म-चक्षुओंसे सर्वत्र प्रत्यक्ष नहीं दीखती। दो लकड़ियोंको घिसिये, अग्नि प्रत्यक्ष हो जायगी। इसी प्रकार चैतन्य सर्वत्र व्यापक हैं। त्याग, वैराग्य और प्रेमका अवलम्बन कीजिये, चैतन्य प्रत्यक्ष होकर ऊपरको हाथ उठा-उठाकर नृत्य करने लगेंगे। जिसका जीवन अग्निमय हो, जो श्रीकृष्णप्रेममें छटपटाता-सा दृष्टिगोचर होता हो, जिसके शरीरमें त्याग, वैराग्य और प्रेमने घर बना लिया हो, जो दूसरोंकी निन्दा और दोष-दर्शनसे दूर रहता हो, वहाँ समझ लो कि श्रीचैतन्य यहाँ प्रत्यक्ष प्रकट हो गये हैं। यदि सचमुच चैतन्यके दर्शन करनेके तुम उत्सुक हो तो इन्हीं स्थानोंमें चैतन्यके दर्शन हो सकेंगे। किन्तु ये सब बातें तो ज्ञानकी हैं। भक्तको इतना अवकाश कहाँ कि वह इन ज्ञानगाथाओंको श्रवण करे। वह तो श्रीचैतन्य-चरित्र ही सुनना चाहता है। उसमें इतना पुरुषार्थ कहाँ? उसका पुरुषार्थ तो इतना ही है कि वह भक्तरूपमें या भगवान्‌रूपमें श्रीकृष्णने जो-जो लीलाएँ की हैं उन्हींको बार-बार सुनना चाहता है। उसकी इच्छा नहीं कि सभी लीलाओंको सुन ले। श्रीकृष्णकी सभी लीलाओंका पार तो वे स्वयं ही नहीं जानते फिर दूसरा कोई तो जान ही क्या सकता है? भक्त तो चाहता है, चाहे कूपसे ला दो या घड़ेसे हमारी तो एक लोटेकी प्यास है, नदीसे लाओगे तो भी एक ही लोटा पीवेंगे और घड़ेसे दोगे तो भी उतना ही। समुद्रमेंसे लाओ तो सम्भव है, हमसे पिया भी न जाय। क्योंकि उसका पान तो कोई अगस्त्य-जैसे महापुरुष ही कर सकते हैं। इसलिये भावुक भक्त सदा श्रीकृष्ण और उनके दूसरे स्वरूप श्रीकृष्ण-भक्तोंकी ही लीलाओंका श्रवण करते रहते हैं। उनका कोमल

हृदय इन अप्रकट और अदर्शन लीलाओंको श्रवण नहीं कर सकता, क्योंकि शिरीषकुसुमके समान, छुईमुईके पत्तोंके समान उनका शीघ्र ही द्रवित हो जानेवाला हृदय होता है। यह बात भी परम भावुक भक्तोंकी है, किन्तु हम-जैसे वज्रके समान हृदय रखनेवाले पुरुष क्या करें? भक्तका तो लक्षण ही यह है कि भगवन्नामके श्रवणमात्रसे ही चन्द्रकान्त-मणिके समान उसके दोनों नेत्र बहने लगें। आँसू ही भक्तका आभूषण है, आँसूमें ही श्रीकृष्ण छिपे रहते हैं। जिस आँखमें आँसू नहीं वहाँ श्रीकृष्ण नहीं। तब हम कैसे करें, हमारी आँखोंमें तो आँसू आते ही नहीं। हाँ, ऐसे-ऐसे हृदयविदारक प्रकरणोंको कभी पढ़ते हैं तो दो-चार बूँदें आप-से-आप ही निकल पड़ती हैं, इसलिये भक्तोंको कष्ट देनेके निमित्त नहीं, अपनी आँखोंको पवित्र करनेके निमित्त, अपने वज्रके समान हृदयको पिघलानेके निमित्त हम यहाँ अति संक्षेपमें श्रीचैतन्य-देवके अदर्शनका यत्किञ्चित् वृत्तान्त लिखते हैं।

चौबीस वर्ष नवद्वीपमें रहकर गृहस्थाश्रममें और चौबीस वर्ष संन्यास लेकर पुरी आदि तीर्थोंमें प्रभुने बिताये। संन्यास लेकर छः वर्षोंतक आप तीर्थोंमें भ्रमण करते रहे और अन्तमें अठारह वर्षोंतक अचल जगन्नाथजीके रूपमें पुरीमें ही रहे। बारह वर्षोंतक निरन्तर दिव्योन्मादकी दशामें रहे। उसका यत्किञ्चित् आभास पाठकोंको पिछले प्रकरणोंमें मिल चुका है। जिन्होंने प्रार्थना करके प्रभुको बुलाया था उन्होंने ही अब पहेली भेजकर गौरहाट उठानेकी अनुमति दे दी। इधर स्नेहमयी शचीमाता भी इस संसारको त्यागकर परलोकवासिनी बन गयीं। श्रीचैतन्य जिस कार्यके लिये अवतरित हुए थे, वह कार्य भी सुचारुरीतिसे सम्पन्न हो गया। अब उन्होंने लीलासंवरण करनेका निश्चय कर लिया। उनके अन्तरङ्ग भक्त तो प्रभुके रंग-ढंगको ही देखकर अनुमान लगा रहे थे

अब हमसे ओझल होना चाहते हैं। इसलिये वे सदा सचेष्ट ही बने रहते थे।

शाके १४५५ (संवत् १५९०, ई० सन् १५३३) का आषाढ़ महीना था। रथयात्राका उत्सव देखनेके निमित्त गौड़देशसे कुछ भक्त आ गये थे। महाप्रभु आज अन्य दिनोंकी अपेक्षा अत्यधिक गम्भीर थे। भक्तोंने इतनी अधिक गम्भीरता उनके जीवनमें कभी नहीं देखी। उनके ललाटसे एक अद्भुत तेज-सा निकल रहा था, अत्यन्त ही दत्तचित्त होकर प्रभु स्वरूपगोस्वामीके मुखसे श्रीकृष्णकथा श्रवण कर रहे थे। सहसा वे वैसे ही जल्दीसे उठकर खड़े हो गये और जल्दीसे अकेले ही श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरकी ओर दौड़ने लगे। भक्तोंको परम आश्चर्य हुआ। महाप्रभु इस प्रकार अकेले मन्दिरकी ओर कभी नहीं जाते थे, इसलिये भक्त भी पीछे पीछे प्रभुके पादपद्मोंका अनुसरण करते हुए दौड़ने लगे। आज महाप्रभु अपने नित्यके नियमित स्थानपर—गरुड़स्तम्भके समीप नहीं रुके, वे सीधे मन्दिरके दरवाजेके समीप चले गये। सभी परम विस्मित-से हो गये। महाप्रभुने एक बार द्वारपरसे ही उझककर श्रीजगन्नाथजीकी ओर देखा और फिर जल्दीसे आप मन्दिरमें घुस गये। महान् आश्चर्य! अघटित घटना! ऐसा पहले कभी भी नहीं हुआ था। मन्दिरके सभी कपाट अपने-आप ही बंद हो गये, महाप्रभु अकेले ही मन्दिरके भीतर थे। सभी भक्तगण चुपचाप दरवाजेपर खड़े इस अलौकिक दृश्यको उत्सुकताके साथ देख रहे थे। गुञ्जाभवनमें एक पूजा करनेवाले भाग्यवान् पुजारी प्रभुकी इस अन्तिम लीलाको प्रत्यक्ष देख रहे थे। उन्होंने देखा, महाप्रभु जगन्नाथजीके सम्मुख हाथ जोड़े खड़े हैं और गद्गद-कण्ठसे प्रार्थना कर रहे हैं—

प्रभुने श्रीजगन्नाथजीके विग्रहका आलिङ्गन किया

'हे दीनवत्सल प्रभो ! हे दयामय देव ! हे जगत्पिता जगन्नाथदेव ! सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि इन चारों युगोंमें कलियुगका एकमात्र धर्म श्रीकृष्णसंकीर्तन ही है । हे नाथ ! आप अब जीवोंपर ऐसी दया कीजिये कि वे निरन्तर आपके सुमधुर नामोंका सदा कीर्तन करते रहें । प्रभो ! अब घोर कलियुग आ गया है, इसमें जीवोंको आपके चरणोंके सिवा दूसरा कोई आश्रय नहीं । इन अनाश्रित जीवोंपर कृपा करके अपने चरणकमलोंका आश्रय प्रदान कीजिये ।' बस, इतना कहते-कहते प्रभुने श्रीजगन्नाथजीके श्रीविग्रहको आलिङ्गन किया और उसी क्षण आप उसमें लीन हो गये ।

पुजारी जल्दीसे यह कहता हुआ—'प्रभो ! यह आप क्या कर रहे हैं, दयालो ! यह आपकी कैसी लीला है' जल्दीसे प्रभुको पकड़नेके लिये दौड़ा ! किन्तु प्रभु अब वहाँ कहाँ ! वे तो अपने असली स्वरूपमें प्रतिष्ठित हो गये । पुजारी मूर्छित होकर गिर पड़ा और हा देव ! हे प्रभो ! हे दयालो ! कहकर जोरोंसे चीत्कार करने लगा । द्वारपर खड़े हुए भक्तोंने पुजारीका करुणाक्रन्दन सुनकर जल्दीसे किवाड़ खोलनेको कहा, किन्तु पुजारीको होश कहाँ ! जैसे-तैसे बहुत कहने-सुननेपर पुजारीने किवाड़ खोले । भक्तोंने मन्दिरमें प्रवेश किया और प्रभुको वहाँ न देखकर अधीर होकर वे पूछने लगे—'प्रभु कहाँ हैं ?' पुजारीने लड़खड़ाती हुई वाणीमें रुक-रुककर सभी कहानी कह सुनायी । सुनते ही भक्तोंकी जो दशा हुई, उसका वर्णन यह काले मुखकी लेखनी भला कैसे कर सकती है ! भक्त पछाड़ खा-खाकर गिरने लगे, कोई दीवारसे सिर रगड़ने लगा। कोई पत्थरसे माथा फोड़ने लगा । कोई रोते-रोते धूलिमें लोटने लगा । स्वरूपगोस्वामी तो प्रभुके बाहरी प्राण ही थे । वे प्रभुके वियोगको कैसे सह सकते थे । वे चुपचाप स्तम्भित भावसे खड़े रहे । उनके पैर लड़खड़ाने

लगे। भक्तोंने देखा उनके मुँहसे कुछ धुआँ-सा निकल रहा है। उसी समय फटसे एक आवाज हुई। स्वरूपगोस्वामीका हृदय फट गया और उन्होंने भी उसी समय प्रभुके ही पथका अनुसरण किया।

भक्तोंको जगन्नाथपुरी अब उजड़ी हुई नगरी-सी मालूम हुई। किसीने तो उसी समय समुद्रमें कूदकर प्राण गँवा दिये। किसीने कुछ किया, और बहुत-से पुरीको छोड़कर विभिन्न स्थानोंमें चले गये। पुरीसे अब गौरहाट उठ गयी। वक्रेश्वर पण्डितने फिर उसे जमानेकी चेष्टा की, किन्तु उसका उल्लेख करना विषयान्तर हो जायगा। किसीके जमानेसे हाट थोड़े ही जमती है, लाखों मठ हैं और उनके लाखों ही पैर पुजाने-वाले महन्त हैं, उनमें वह चैतन्यता कहाँ? साँप तो निकल गया, पीछे-से लकीरको पीटते रहो। इससे क्या? इस प्रकार अड़तालीस वर्षोंतक इस धराधामपर प्रेमरूपी अमृतकी वर्षा करनेके पश्चात् महाप्रभु अपने सत्स्वरूपमें जाकर अवस्थित हो गये। बोलो प्रेमावतार श्रीचैतन्यदेवकी जय! बोलो उनके सभी प्रिय पार्षदोंकी जय! बोलो भगवन्नामप्रचारक श्रीगौरचन्द्रकी जय!

नामसंकीर्त्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥

(श्रीमद्भागवत १२। १३। २३)

'जिनके नामका सुमधुर संकीर्तन सर्व पापोंको नाश करनेवाला है और जिनको प्रणाम करना सकल दुःखोंको नाश करनेवाला है उन सर्वोत्तम श्रीहरिके पादपद्मोंमें मैं प्रणाम करता हूँ।'

इति शम्

श्रीमती विष्णुप्रियादेवी

गौरशक्तिं महामायां नवद्वीपनिवासिनीम्।
विष्णुप्रियां सतीं साध्वीं तां देवीं प्रणतोऽस्म्यहम् ॥*

(प्र० द० प्र०)

यह विश्व महामाया शक्तिके ही अवलम्बसे अवस्थित है। शक्ति-हीन संसारकी कल्पना ही नहीं हो सकती। सर्वशक्तिमान् शिव भी शक्तिके बिना शव बने पड़े रहते हैं। जब उनके अचेतन शवमें शक्ति-देवीका सञ्चार होता है, तभी वे शवसे शिव बन जाते हैं। शक्ति प्रच्छन्न रहती है और शक्तिमान् प्रकट होकर प्रसिद्धि प्राप्त कर लेता है। यथार्थमें तो उस शक्तिकी ही साधना कठोर है। वनवासी वीतरागी विरक्त तपस्वियोंकी अपेक्षा छिपकर साधना करनेवाली सती-साध्वी, शक्तिरूपिणी देवीकी तपस्याको मैं अधिक श्रेष्ठ मानता हूँ। हृदयपर हाथ रखकर उस सतीकी तपश्चर्याकी कल्पना तो कीजिये, जो संसारमें रहकर भी संसारसे एकदम पृथक् रहती है। उसका सम्पूर्ण संसार पतिकी मनोहर मूर्तिमें ही सन्निहित हो जाता है। उसकी सभी इन्द्रियोंके व्यापार, चित्त और मनकी क्रियाएँ एकमात्र पतिके ही लिये होती हैं। पतिके रूपका चिन्तन ही उसके मनका आहार बन जाता है। अहा! कितनी ऊँची स्थिति होती होगी, क्या कोई शरीरको सुखाकर ही अपनेको कृतकृत्य समझनेवाला तपस्वी इस भयङ्कर तपस्याका अनुमान लगा सकता है?

---

* नवद्वीपमें निवास करनेवाली श्रीगौराङ्गदेवकी शक्ति महामायास्वरूपिणी सती-साध्वी श्रीविष्णुप्रियादेवीको मैं प्रणाम करता हूँ।

भगवान् बुद्धदेवके राज्य-त्यागकी सभी प्रशंसा करते हैं, किन्तु उस साध्वी गोपाका कोई नाम भी नहीं जानता जो अपने पाँच वर्षके पुत्र राहुलको संन्यासी बनाकर स्वयं भी राजमहल परित्याग करके अपने पति भगवान् बुद्धदेवके साथ भिक्षुणीवेषमें द्वार-द्वार भिक्षा माँगती रही। परमहंस रामकृष्णदेवके वैराग्यकी बात सभीपर विदित है, किन्तु उस भोली बाला शारदादेवीका नाम बहुत कम लोग जानते हैं जो पाँचवर्षकी अबोध बालिकाकी दशामें अपने पितृगृहको परित्याग करके अपने पगले पतिके घरमे आकर रहने लगी। परमहंसदेवने जब प्रेमके पागलपनमें संन्यास लिया था, तब वह जगन्माता पूर्ण युवती थी। अपने पतिके पागलपनकी बातें सुनकर वह लोकलाजकी कुछ भी परवा न करके अपने संन्यासी स्वामीके साथ रहने लगी। कल्पना तो कीजिये। युवावस्था रूपलावण्ययुक्त परम रूपवान् पुरुषकी सेवा, सो भी एकान्तमे और वह भी पादसेवाका गुरुतर कार्य। परम आश्चर्यकी बात तो यह है कि वह पुरुष भी परपुरुष नहीं अपना सगा स्वामी ही है, जिसपर भी किसी प्रकारका विकार मनमें न आना। 'कामश्चाष्टगुणः स्मृतः' * कहनेवाले वे कवि कल्पना करें कि क्या ऐसी घोर तपस्या पञ्चाग्नि तापने और शीतमे सैकड़ों वर्षोंतक जलमें खड़े रहनेवाली तपस्यासे कुछ कम है! अहा! ऐसी सती-साध्वी देवियोंके चरणोंमें हम कोटि-कोटि प्रणाम करते हैं। महाप्रभुके त्याग-वैराग्यका वृत्तान्त तो पाठक पिछले प्रकरणोंमें पढ़ ही चुके हैं, किन्तु उनसे भी बढ़कर त्याग और वैराग्य श्रीमती विष्णुप्रिया-जीका था। प्रभुका साधन सभी भक्तोंके समक्षमें हुआ, इससे भक्तोंके द्वारा वह संसारको विदित हो गया परन्तु श्रीविष्णुप्रियाजीकी साधना घरके भीतर एक गहरे कोनेमें नर-नारियोंकी दृष्टिसे एकदम अलग हुई इसलिये वह उतनी अधिक प्रसिद्धि प्राप्त न कर सकी। उनकी साधनाका

---

* स्त्रियोंमें पुरुषोंकी अपेक्षा आठगुना कामोद्रेग बताया जाता है।

जो भी कुछ थोड़ा-बहुत समाचार मिलता है, उसे सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। क्या कोई भी व्यक्ति इस प्रकारकी कठोरता कर सकता है ! अबला कही जानेवाली नारी-जातिके द्वारा क्या इतनी तीव्रतम तपस्या सम्भव हो सकती है ! किन्तु इसमें अविश्वासकी तो कोई बात ही नहीं। अद्वैताचार्यजीके प्रिय शिष्य ईशान नागरने प्रत्यक्ष देखकर अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अद्वैत-प्रकाश' मे इसका उल्लेख किया है। उस कठोरताकी कथाको सुनकर तो कठोरताका भी हृदय फटने लगेगा। बड़ी ही करुण कहानी है।

महाप्रभु संन्यास लेकर गृहत्यागी वैरागी बन गये, उससे उस पतिप्राणा प्रियाजीको कितना अधिक क्लेश हुआ होगा, यह विषय अवर्णनीय है। मनुष्यकी शक्तिके बाहरकी बात है। एक बार वृन्दावन जाते समय केवल विष्णुप्रियाजीकी ही तीव्र विरहवेदनाको शान्त करनेके निमित्त क्षणभरके लिये प्रभु अपने पुराने घरपर पधारे थे। उस समय विष्णुप्रियाजीने अपने संन्यासी पतिके पादपद्मोंमें प्रणत होकर उनसे जीवनालम्बनके लिये किसी चिह्नकी याचना की थी। दयामय प्रभुने अपने पादपद्मोंकी पुनीत पादुकाएँ उसी समय प्रियाजीको प्रदान की थीं और उन्हींके द्वारा जीवन धारण करते रहनेका उपदेश किया था। पतिकी पादुकाओंको पाकर पतिपरायणा प्रियाजीको परम प्रसन्नता प्राप्त हुई और उन्हींको अपने जीवनका सहारा बनाकर वे इस पाञ्चभौतिक शरीरको टिकाये रहीं। उनका मन सदा नीलाचलके एक निभृत स्थानमें किन्हीं अरुण रंगवाले दो चरणोंके बीचमें भ्रमण करता रहता। शरीर यहाँ नवद्वीपमें रहता, उसके द्वारा वे अपनी वृद्धा सासकी सदा सेवा करती रहतीं। शचीमाताके जीवनका एकमात्र अवलम्बन अपनी प्यारी पुत्रवधूका कमलके समान म्लान मुख ही था। माता उस म्लान मुखको विकसित और प्रफुल्लित करनेके लिये भाँति-भाँतिकी चेष्टाएँ करतीं।

पुत्रवधूके सुवर्णके समान शरीरको सुन्दर-सुन्दर वस्त्र और आभूषणोंसे सजातीं। प्रभुके भेजे हुए जगन्नाथजीके बहुत ही मूल्यवान् पट्टवस्त्रको वे उन्हें पहनातीं तथा और भी विविध प्रकारसे उन्हें प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करतीं। किन्तु विष्णुप्रियाजीकी प्रसन्नता तो पुरीके गम्भीरा मन्दिरके किसी कोनेमें थिरक रही है, वह नवद्वीपमें कैसे आ जाय। शरीर तो उसके एक ही है, इसीलिये इन वस्त्राभूषणोंसे विष्णुप्रियाजीको अणुमात्र भी प्रसन्नता न होती। वे अपनी वृद्धा सासकी आज्ञाको उल्लङ्घन नहीं करना चाहती थीं। प्रभुके प्रेषित प्रसादी पट्टवस्त्रका अपमान न हो, इस भयसे वे उस मूल्यवान् वस्त्रको भी धारण कर लेतीं, और आभूषणोंको भी पहन लेतीं किन्तु उन्हें पहनकर वे बाहर नहीं जाती थीं।

प्रभुका पुराना भृत्य ईशान अभीतक प्रभुके घरपर ही था। शचीमाता उसे पुत्रकी भाँति प्यार करतीं। वही प्रियाजी तथा माताजीकी सभी प्रकारकी सेवा करता था। ईशान बहुत वृद्ध हो गया था, इसीलिये प्रभुने वंशीवदन नामक एक ब्राह्मणको माताकी सेवाके निमित्त और भेज दिया था। ये दोनों ही तन-मनसे माता तथा प्रियाजीकी सभी सेवा करते थे। प्रियाजीके पास काञ्चना नामकी एक उनकी सेविका सखी थी, वह सदा प्रियाजीके साथ ही रहती और उनकी हर प्रकारकी सेवा करती। दामोदर पण्डित भी नवद्वीपमें ही रहकर माताकी रेख-देख करते रहते और बीच-बीचमें पुरी जाकर माताजी तथा प्रियाजीका सभी संवाद सुना आते। विष्णुप्रियाजी उन दिनों घोर त्यागमय जीवन बिताती थीं। दामोदर पण्डितके द्वारा प्रभु जब इनके घोर वैराग्य और कठिन तपका समाचार सुनते तब वे मन-ही-मन अत्यधिक प्रसन्न होते।

विष्णुप्रियाजीका एकमात्र अवलम्बन वे प्रभुकी पुनीत पादुकाएँ ही थीं। अपने पूजागृहमें वे एक उच्चासनपर उन पादुकाओंको पधराये

हुए थीं और नित्यप्रति धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे उनकी पूजा किया करती थीं। वे निरन्तर—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इसी महामन्त्रको जपती रहतीं। उन्होंने अपना आहार बहुत ही कम कर दिया था, किन्तु शचीमाताके आग्रहसे वे कभी-कभी कुछ अधिक भोजन कर लेती थीं।

पुत्रशोकसे जर्जरित हुई वृद्धा माताका हृदय फट गया था। पुत्रकी दिव्योन्मादकारी अवस्था सुनकर तो उसके घायल हृदयमें मानो किसीने विषसे बुझे हुए बाण वेध दिये हों। एक दिन माताने अधीर होकर भक्तोंसे कहा—'निमाईके विरहदुःखकी ज्वाला अब मेरे अन्तःकरणको तीव्रताके साथ जला रही है, अब मेरा यह पार्थिव शरीर टिक न सकेगा, इसलिये तुम मुझे भगवती भागीरथीके तटपर ले चलो।' भक्तोंने जगन्माताकी आज्ञाका पालन किया, और वे स्वयं अपने कन्धोंपर पालकी रखकर माताको गङ्गाकिनारे ले गये। पीछेसे पालकीपर चढ़कर विष्णुप्रियाजी भी वहाँ पहुँच गयीं। पुत्रशोकसे तड़फड़ाती हुई माताने अपनी प्यारी पुत्रवधूको अपने पास बुलाया। उसके हाथको अपने हाथसे धीरे-धीरे पकड़कर माताने कष्टके साथ पुत्रवधूका माथा चूमा और उसे कुछ उपदेश करके इस नश्वर शरीरको त्याग दिया। शचीमाताके वैकुण्ठगमनसे सभी भक्तोंको अपार दुःख हुआ। सासकी क्रिया कराकर प्रियाजी घर लौटीं। अब वे नितान्त अकेली रह गयी थीं। ईशान मातासे पहले ही परलोकवासी बन चुका था, उसे अपनी स्नेहमयी माताका यह हृदयविदारक दृश्य अपनी आँखोंसे नहीं देखना पड़ा। घरमें वंशीवदन था, और दामोदर पण्डित भी गृहके कार्योंकी रेख-देख करते थे। विष्णु-

प्रियाजीका वैराग्य अब और भी अधिक बढ़ गया, अब वे दिनरात अपने प्राणनाथके विरहमें तड़पती रहती थीं। अभीतक माताके वियोगका दुःख कम नहीं हुआ था कि प्रियाजीको यह हृदयविदारक समाचार मिला कि श्रीगौर अपनी लीलाको संवरण करके अपने नित्यधामको चले गये। इस दुस्सह समाचारको सुनकर तपस्विनी विष्णुप्रियाजी, कटे हुए केलेके वृक्षके समान भूमिपर गिर पड़ीं। उन्होंने अन्न-जलका एकदम परित्याग कर दिया। स्वामिनी-भक्त वंशीवदन ऐसी दशामें कैसे अन्नग्रहण करता। वह प्रियाजीका मन्त्रशिष्य भी था, इसलिये उसने भी अपने मुँहमें अन्नका दाना नहीं दिया। भक्तोंने आकर भाँति-भाँतिकी विनती की, किन्तु प्रियाजीने अन्न-जल ग्रहण करना स्वीकार ही नहीं किया। जब स्वप्नमें आकर प्रत्यक्ष श्रीगौराङ्गदेवने उनसे अभी कुछ दिन और शरीर धारण करनेकी आज्ञा दी, तब उन्होंने थोड़ा अन्न ग्रहण किया।

एक दिन प्रियाजी भीतर शयन कर रही थीं, वंशीवदन बाहर बरामदेमें सो रहा था। उसी समय स्वप्नमें उन्होंने देखा—मानो प्रत्यक्ष श्रीगौराङ्ग आकर कह रहे हैं—'जिस नीमके नीचे मैंने माताके स्तनका पान किया था, उसीके नीचे मेरी काष्ठकी मूर्ति स्थापित करो, मैं उसीमें आकर रहूँगा।' विष्णुप्रियादेवी उसी समय चौंककर उठ बैठीं, प्रातःकाल होनेको था, वंशीवदन भी जाग गया और उसने भी उसी क्षण ठीक यही स्वप्न देखा था। जब दोनोंने परस्पर एक दूसरेको स्वप्नकी बात सुनायी, तब तो शीघ्र ही दारुमयी मूर्तिकी स्थापनाका आयोजन होने लगा। वंशीवदनने उसी नीमकी एक सुन्दर लकड़ी काटकर बढ़ईसे एक बहुत ही सुन्दर श्रीगौराङ्गकी मूर्ति बनवायी। पंद्रह दिनमें मूर्ति बनकर तैयार हो गयी, वंशीवदनने लोहेकी सलाकासे उसपर अपना नाम खोदा। जब वस्त्राभूषण पहनाकर श्रीगौराङ्गविग्रहको सिंहासनपर पधराया गया, तब सभीको उसमें प्रत्यक्ष श्रीगौराङ्गके दर्शन होने लगे। वंशी-

वदनने दूर-दूरसे भक्तोंको बुलाकर खूब धूमधामसे उस मूर्तिकी प्रतिष्ठा की और एक बड़ा भारी भण्डारा किया। देवी विष्णुप्रियाजीने श्रीविग्रहकी नित्य-नैमित्तिक पूजाके निमित्त अपने भाई तथा भाईके पुत्र यादव-नन्दनको मन्दिरमे नियुक्त किया। श्रीविष्णुप्रियाजी नित्यप्रति मन्दिरमें दर्शन करनेके निमित्त जाया करती थीं और वंशीवदन भी उस मनोहर मूर्तिके दर्शनोंसे परम प्रसन्न होता था। वह मूर्ति अबतक श्रीनवद्वीपमें विराजमान है और उसके गोस्वामी पुजारी उन्हीं श्रीयादवनन्दनाचार्य-के वंशजोंमेंसे होते हैं। आजकल वे सभी श्रीमान् और धन-सम्पन्न हैं, भक्तोंमें वे महाप्रभुके स्यालकवंश गोस्वामी बोले जाते हैं।

कुछ कालके अनन्तर वंशीवदन भी इस असार संसारको परित्याग करके परलोकवासी बन गये। अब प्रियाजीकी सभी सेवाका भार वृद्ध दामोदर पण्डितके ही ऊपर पड़ा। अपने प्रिय शिष्यके वियोगसे प्रियाजीको अत्यधिक क्लेश हुआ, और अब उन्होंने घरसे बाहर निकलना भी बंद कर दिया। पहले अँधेरेमें काञ्चनाके साथ गङ्गास्नान करनेके निमित्त घाटपर चली जाती थीं, अब घरमें ही गङ्गाजल मँगाकर स्नान करने लगीं। कोई भी पुरुष उनके दर्शन नहीं कर सकता था। उन्होंने वैसे तो पर-पुरुषसे जीवनभरमें कभी बातें नहीं कीं, किन्तु अब उन्होंने भक्तोंको भी दर्शन देना बंद कर दिया। शामके समय पर्देकी आड़मेंसे भक्तोंको उनके चरणोंके दर्शन होते थे, उन अरुण रंगके कोमल चरण-कमलोंके दर्शनसे ही भक्त अपनेको कृतकृत्य समझते।

श्रीमद् अद्वैताचार्यजी अभीतक जीवित थे। वृद्धावस्थाके कारण उनका शरीर बहुत ही अधिक जर्जरित हो गया था। उन्होंने जब प्रिया-जीके ऐसे कठोर तपकी बात सुनी, तब तो उन्होंने अपने प्रिय शिष्य ईशान नागरको प्रियाजीका समाचार लेनेके निमित्त नवद्वीप भेजा। शान्ति-

पुरसे नागर महाशय आये। यहाँ दामोदर पण्डित और श्रीवास पण्डितसे मिलकर उन्होंने जगन्माता श्रीविष्णुप्रियाजीके दर्शनोंकी इच्छा प्रकट की। दामोदर पण्डित ईशान नागरको प्रियाजीके अन्तःपुरमें ले गये, और वे प्रियाजीके चरणकमलोंके दर्शनोंसे कृतार्थ हुए। उन दिनों प्रियाजीका तप अलौकिक हो रहा था। वे सदा पूजामन्दिरमें ही बैठी रहतीं। एक पात्रमें चावल भरकर सामने रख लेतीं और दूसरे पात्रको खाली ही रखतीं। प्रातःकाल स्नान करके वे महामन्त्रका जप करने बैठतीं। एक बार—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—यह सोलह नामोंवाला मन्त्र कह लिया और एक चावल उस खाली पात्रमें डाल दिया। इस प्रकार तीसरे पहरतक वे निरन्तर जप करती रहतीं। जपकी संख्याके साथ डाले हुए उतने ही चावलोंको तीसरे पहर बनातीं। उनमें न तो नमक डालतीं और न दाल बनातीं। बस, उन्हींमेंसे थोड़े-से चावल भोग लगाकर प्रसादरूपमें स्वयं पा लेतीं, और शेष थोड़े-से भक्तोंको प्रसाद बाँटनेके निमित्त थालीमें छोड़ देतीं, जिसे काञ्चना भक्तोंमें बाँट देती। पाठक, अनुमान तो लगावें। बत्तीस अक्षरवाले इस मन्त्रको जपनेसे कितने चावल तीसरे पहरतक होते होंगे, उन्हें ही बिना दाल-सागके पाना और प्रसादके लिये शेष भी छोड़ देना। अल्पाहारकी यहाँ हद हो गयी। ईशान नागरने अपने 'चैतन्यप्रकाश' नामक ग्रन्थमें स्वयं वर्णन किया है—

विष्णुप्रिया माता शचीदेवीर अन्तर्धाने।
भक्तद्वारे द्वाररुद्ध कैला स्वेच्छाक्रमे॥
तार आज्ञा विना ताने निषेध दर्शने।
अत्यन्त कठोर व्रत करिला धारणे॥

प्रत्यूषेते स्नान करि कृताह्निक हय्या।
हरिनाम करि किछु तण्डुल लइया॥
नाम प्रति एक तण्डुल मृत-पात्रे राखय।
हेन मते तृतीय प्रहर नाम लय॥
जपान्ते सेइ संख्यार तण्डुल मात्र लय्या।
यत्ने पाक करे मुख वस्त्रेते बान्धिया॥
अलवण अनुपकरण अन्न लय्या।
महाप्रभुर भोग लगाय काकुति करिया॥
विविध विलाप करि दिया आचमनी।
मुष्टिक-प्रसाद मात्र भुञ्जेन आपनि॥
अवशेषे प्रसादान्न विलाय भक्तेरे।
एछन कठोर व्रत के करिते पारे॥

अर्थात् शचीमाताके अन्तर्धान हो जानेके अनन्तर श्रीविष्णुप्रिया-देवी भक्तोंके द्वारा अपने घरके किवाड़ बंद करा लेती थीं। द्वार खुल-वाने न खुलवानेका अधिकार उन्होंने स्वयं ही अपने अधीन कर रक्खा था। उनकी आज्ञाके बिना कोई भी उनके दर्शन नहीं कर सकता था। उन्होंने अत्यन्त ही कठोर व्रत धारण कर रक्खा था। प्रातःकाल नित्य-कर्मोंसे निवृत्त होकर वे हरिनाम-जप करनेके निमित्त कुछ चावल अपने सम्मुख रख लेती थीं और प्रति मन्त्रपर एक-एक चावल मिट्टीके पात्रमें डालती जाती थीं। इस प्रकार वे तीसरे पहरतक जप करती थीं। फिर तीसरे पहर यत्नपूर्वक वस्त्रसे मुखको बाँधकर उन चावलोंका पाक करती थीं। बिना नमक और बिना दाल-शाकके उन चावलोंका महाप्रभुको भोग लगाती थीं, भाँति-भाँतिके स्नेह वचन कहतीं, स्तुति-प्रार्थना करके विविध भाँतिके विलाप करतीं, अन्तमें आचमनी देकर भोग उतारतीं

और उसमेंसे एक मुट्ठीभर चावल प्रसाद समझकर पा लेतीं। शेष बचा हुआ प्रसाद भक्तोंमें वितरित कर दिया जाता था। इस प्रकारका कठोर व्रत कौन कर सकेगा?' सचमुच कोई भी इस व्रतको नहीं कर सकता। श्रीगौराङ्गकी अर्धाङ्गिनी! सचमुच तुम्हारा यह व्रत तुम-जैसी तपस्वीकी प्रणयिनीके ही अनुरूप है। माता! तुम्हारे ही तपसे तो गौर-भक्त तप और व्रतका कठोर नियम सीखे हैं। हमारी माताएँ तुम्हें अपना आदर्श बना लें तो यह अशान्तिपूर्ण संसार स्वर्गसे भी बढ़कर सुखकर और आनन्दप्रद बन जाय।

श्रीईशान नागरने प्रियाजीका सभी वृत्तान्त अपने प्रभु अद्वैताचार्यसे जाकर कहा। आचार्यने सुनकर कुछ अन्यमनस्कभावसे कहा—'अच्छा, जैसी श्रीकृष्णकी इच्छा।'

अवधूत नित्यानन्दजी भी जाह्नवी और वसुमती नामकी अपनी दोनों गृहिणियोंको छोड़कर परलोकवासी बन चुके थे। वसुमतीकी गोदमें वीरचन्द्र नामक एक पुत्र था, जाह्नवीकी गोद खाली थी। जाह्नवीदेवी पढ़ी-लिखी और देश-कालको समझनेवाली थीं। पतिके पश्चात् वे ही भक्तोंको मन्त्रदीक्षा देती थीं। उनका आजतक कभी श्रीविष्णुप्रियाजीसे साक्षात्कार नहीं हुआ था। अपने पति अवधूत नित्यानन्दके द्वारा वे विष्णुप्रियाजीके गुणोंको सुनती रहती थीं। अब जब उन दोनोंने विष्णुप्रियाजीके ऐसे कठोर तपकी बात सुनी तब तो श्रीविष्णुप्रियाजीके दर्शनोंकी उनकी इच्छा प्रबल हो उठी। वे दोनों शान्तिपुरमें श्रीअद्वैताचार्यके घर आयीं और वहाँसे अद्वैताचार्यकी गृहिणी श्रीसीतादेवीको साथ लेकर विष्णुप्रियाजीके दर्शनोंको चलीं। नवद्वीपमें वे वंशीवदनके घर आकर उतरीं। इस बातको हम पहले ही बता चुके हैं कि वंशीवदन इस असार संसारको सदाके लिये त्याग गये थे, उनके चैतन्यदास और

निताईदास ये दो पुत्र थे। बड़े पुत्रके उन दिनों एक पुत्र हुआ था, जिसका नाम घरवालोंने रामचन्द्र रक्खा था। आगे चलकर ये ही रमाई पण्डितके नामसे प्रसिद्ध हुए। इनमें वंशीवदनका अंश माना जाता है।

विष्णुप्रियाजीने अवधूतकी धर्मपत्नियोंके आगमनका समाचार सुना। उन्होंने उन बेचारियोंको पहले कभी नहीं देखा था। हाँ, वे सुना करती थीं कि अवधूत अब गृहस्थी बनकर रहते हैं। प्रियाजी बाहर तो निकलती ही नहीं थीं। किन्तु जब उन्होंने अवधूतकी गृहिणियोंका और सीतादेवीका समाचार सुना, तब तो अपने प्रिय शिष्य वंशीवदनके घर जानेमें कोई आपत्ति न समझी। वंशीवदन उनके पुत्रके समान था, वंशीवदनका पुत्र चैतन्यदास भी प्रियाजीके चरणोंमें अत्यधिक भक्ति रखता था, उसके घरको कृतार्थ करने और उसके पुत्र रामचन्द्रको देखने तथा सीतादेवी आदिसे मिलनेके निमित्त प्रियाजी चैतन्यदासके घर पधारीं। चैतन्यदासका घर प्रियाजीके घरके अत्यन्त ही समीप था। प्रियाजीके पधारनेसे परिवारके सभी लोगोंके हर्षका ठिकाना नहीं रहा। *नित्यानन्दजीकी गृहिणी जाह्नवीदेवीने उठकर विष्णुप्रियाजीका स्वागत* किया। दोनों ही महापुरुषोंकी अर्धांङ्गिनी सगी दो बहिनोंके समान परस्पर हृदय-से-हृदय मिलाकर मिलीं। तब जाह्नवीदेवी एकान्तमें प्रियाजीको लेकर उनसे स्नेहकी बातें करने लगीं। जाह्नवीने स्नेहसे प्रियाजीके कोमल करको अपने हाथमें लेते हुए कहा—'बहिन! तुम इतना कठोर तप क्यों कर रही हो! इस शरीरको सुखानेसे क्या लाभ! इसी शरीरसे तो तुम हरिनाम ले सकती हो। बहिन! तुम्हारी ऐसी दयनीय दशा देखकर मेरी छाती फटी जाती है। मेरे पति महाप्रभुकी आज्ञासे अवधूतवेष छोड़कर गृहस्थी बन गये। उन्हें इतनी कठोरता अभीष्ट नहीं थी। मेरे पति मुझसे अन्तिम समयमें कह गये थे, शरीरको कष्ट देना ठीक नहीं है। बहुत कठोरता कामकी नहीं होती।'

धीरे-धीरे आँखोंमें आँसू भरकर प्रियाजीने कहा—'बहिन! तुम अपने पतिकी आज्ञाका पालन करो। मेरे पति तो भिक्षुक बनकर, भिक्षापर निर्वाह करके, स्त्रियोंके स्पर्शसे दूर रहकर घोर तपस्वीकी तरह जीवनभर रहे। उन्होंने अपने शरीरको कभी सुख नहीं पहुँचाया। मैं तो जितना बन सकेगा, शरीरको सुखाऊँगी।' इतना कहते-कहते प्रियाजी रुदन करने लगीं।

इसके अनन्तर उन्होंने जाकर सीतादेवीके पैर छुए। सीतामाताने उनके हाथ पकड़ते हुए कहा—'तुम गौराङ्गकी गृहिणी हो, जगन्माता हो, तुम मेरे पैर मत छुओ।' विष्णुप्रियाजी अधीर होकर वृद्धा सीतामाताकी गोदमें लुढ़क गयीं। सीतामाताने उनके सिरको गोदीमें रखते हुए कहा—'इस कमलवदनको देखकर ही मैं गौराङ्गके दुःखको भूल जाती हूँ। विष्णुप्रिये! तुम इतनी कठोरता मत करो। मेरे वृद्ध पति तुम्हारे इस कठोर व्रतसे सदा खिन्न-से रहते हैं।' विष्णुप्रियाजीके दोनों कमलके समान बड़े-बड़े नेत्रोंसे निरन्तर अश्रु निकल रहे थे। सीतामाता उन्हें अपने अञ्चलसे पोंछ देतीं और उसी क्षण वे फिर भर आते। सीतादेवीके वस्त्र भीग गये, किन्तु विष्णुप्रियाजीके नेत्रोंका जल न रुका। रोते-रोते उन्होंने सबसे विदा ली। जाह्नवीदेवीने पूछा—'बहिन! अब कब भेंट होगी?

अपने आँसुओंसे जाह्नवीदेवीके वक्षःस्थलको भिगोती हुई विष्णुप्रियाजीने कहा—'अब मिलना क्या? जब दैवकी इच्छा होगी।' इतना कहते-कहते प्रियाजीने रोते-रोते जाह्नवीदेवी और वसुमतीदेवीका आलिङ्गन किया, सीतामाताके पैर छुए और वे घरको चली आयीं।

अब विष्णुप्रियाजीका वियोग दिनोंदिन अधिकाधिक बढ़ने लगा। अब वे दिन-रात रोती ही रहती थीं। काञ्चना उन्हें श्रीचैतन्यलीलाएँ सुना-सुनाकर सान्त्वना प्रदान करती रहती, किन्तु विष्णुप्रियाजीका हृदय

अपने पतिके पास पतिलोकमें जानेके लिये तड़फ रही थी। इसलिये रात-दिन उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा ही प्रवाहित होती रहती।

फाल्गुनी पूर्णिमा थी, चैतन्यदेवके जन्मका दिवस था। विष्णुप्रियाजीकी अधीरता आज अन्य दिनोंकी अपेक्षा अत्यधिक बढ़ गयी थी। वे पगलीकी तरह हा प्राणनाथ! हा हृदयरमण! हा जीवन-सर्वस्व! कहकर लंबी-लंबी साँसें छोड़ती थीं। काञ्चना उनकी ऐसी दशा देखकर चैतन्यचरित्र सुना-सुनाकर सान्त्वना देने लगी किन्तु आज वे शान्त होती ही नहीं थीं, थोड़ी देरके पश्चात् उन्होंने कहा—'काञ्चने! तू यादवको तो बुला ला, आज मैं उनकी मूर्तिके भीतरसे दर्शन करना चाहती हूँ।'

काञ्चनाने उसी समय आज्ञाका पालन किया। वह जल्दीसे यादवाचार्य गोस्वामीको बुला लायी। आचार्यने मन्दिरके कपाट खोले। लंबी-लंबी साँस लेती हुई वस्त्रसे शरीर ढककर विष्णुप्रियादेवीजीने मन्दिरमें प्रवेश किया और थोड़ी देर एकान्तमें रहनेकी इच्छासे किवाड़ बंद करा दिये। यादवाचार्यने किवाड़ बंद कर दिये। काञ्चना द्वारपर खड़ी रही। जब बहुत देर हो गयी तब काञ्चनाने व्यग्रताके साथ आचार्यसे किवाड़ खोलनेको कहा। आचार्यने डरते-डरते किवाड़ खोले। बस, अब वहाँ क्या था, श्रीविष्णुप्रियाजी तो अपने पतिके साथ एकीभूत हो गयीं। उसके पश्चात् फिर किसीको श्रीविष्णुप्रियाजीके इस भौतिक शरीरके दर्शन नहीं हुए। मन्दिरको शून्य देखकर काञ्चना चीत्कार मारकर बेहोश होकर गिर पड़ी, सभी भक्त हाहाकार करने लगे। हा गौर! हा विष्णुप्रिये! की करुणाभरी ध्वनिसे दिशा-विदिशाएँ भर गयीं। भक्तोंके करुणाक्रन्दनसे आकाशमण्डल गूँजने लगा।

श्रीश्रीनिवासाचार्यजी

गौरशक्तिधरं सौम्यं सुन्दरं सुमनोहरम्।
गोपालानुगतं विज्ञं श्रीनिवासं नमाम्यहम्॥*

(प्र० द० त्र०)

आचार्य श्रीनिवासजीके पूजनीय पितृदेव श्रीचैतन्यदास वर्दवान जिलेके अन्तर्गत चाकन्दी नामक ग्राममें रहते थे। वे श्रीचैतन्यदेवके अनन्य भक्तोंमेंसे थे। असलमें उनका नाम तो था गङ्गाधर भट्टाचार्य किन्तु श्रीचैतन्यके प्रेमबाहुल्यके कारण लोग इन्हें 'चैतन्यदास' कहने लगे थे।

महाप्रभु जब गृह त्यागकर कटवामें केशव भारतीके स्थानपर संन्यास-दीक्षा लेने आये, तब वहाँ उनके दर्शनोंके लिये बहुत-से आदमी

---

* जो साक्षात् श्रीचैतन्यदेवके प्रेमके दूसरे विग्रह समझे जाते हैं, जो चैतन्यदेवके ही समान सुन्दर, सौम्य और लोगोंके मनको हठात् अपनी ओर आकर्षित करनेवाले थे, उन आचार्यप्रवर श्रीगोपालभट्टजीके प्रिय शिष्य श्रीश्रीनिवासाचार्यके चरणोंमें मैं प्रणाम करता हूँ।

आये हुए थे। उन आगत मनुष्योंमेसे भट्टाचार्य गङ्गाधरजी भी थे। उन्होंने यह हृदयविदारक दृश्य अपनी आँखोंसे देखा था। बस, उसी शोकमें ये पागलोंकी तरह हा चैतन्य! हा चैतन्य! कहकर फिरने लगे, तभीसे ये चैतन्यदासके नामसे पुकारे जाने लगे।

ईश्वरकी इच्छा बड़ी ही प्रबल होती है, वृद्धावस्थामें चैतन्यदासजीको सन्तानका मुख देखनेकी इच्छा हुई। विवाह तो इनका बहुत पहले ही हो चुका था, इनकी धर्मपत्नी श्रीलक्ष्मीप्रियाजी बड़ी ही पतिपरायणा सती-साध्वी नारी थीं। वे अपने पतिको संसारी विषयोंसे विरक्त देखकर खिन्न नहीं होती थीं। पतिकी प्रसन्नतामें ही वे अपनी प्रसन्नता समझतीं। इस वृद्धावस्थामें दम्पतीको पुत्र-दर्शनकी लालसा हुई। दोनों ही पति-पत्नी पुरीमें महाप्रभुके दर्शनोंके लिये गये। महाप्रभुने आशीर्वाद दिया कि 'तुम्हारे जो पुत्र होगा, उसमें हमारी शक्तिका अंश रहेगा, वह हमारा ही दूसरा विग्रह होगा।' महाप्रभुका वरदान अन्यथा थोड़े ही हो सकता था। इसके दूसरे ही वर्ष लक्ष्मीप्रियाजीने चाकन्दीमें एक पुत्र-रत्न प्रसव किया। माता-पिताने उसका नाम रक्खा श्रीनिवास। ये ही श्रीनिवास आगे चलकर श्रीनिवासाचार्यके नामसे भक्तोंमें अत्यधिक प्रसिद्ध हुए।

श्रीनिवास बाल्यकालसे ही बुद्धिमान्, सुशील, सौम्य और मेधावी प्रतीत होते थे। सतरह-अठारह वर्षकी अल्पावस्थामे ही ये व्याकरण, काव्य तथा अलङ्कार-शास्त्रोंमें पारङ्गत हो गये थे। इनकी ननसाल जाजिग्राममें थी, इनके नाना श्रीबलरामाचार्य भी परम भक्त और सच्चे वैष्णव थे। इनकी माता तो बड़ी पतिपरायणा और चैतन्य-चरणोंमें श्रद्धा रखनेवाली थीं। बाल्यकालसे ही उसने अपने प्रिय पुत्र श्रीनिवासको चैतन्य-लीलाएँ कण्ठस्थ करा दी थीं। बच्चेके हृदयमें बाल्यकालकी जमी हुई

छाप सदाके लिये अमिट-सी हो जाती है। श्रीनिवासके हृदयमें भी चैतन्यकी मनमोहिनी मूर्ति समा गयी। वे चैतन्य-चरणोंके दर्शनोंके लिये छटपटाने लगे।

एक दिन ये अपनी ननसाल जाजिग्रामको जा रहे थे, रास्तेमें श्रीदृनिवासी श्रीनरहरि सरकारसे इनकी भेंट हो गयी। सरकार महाशय महाप्रभुके अनन्य भक्त थे और गौर-भक्तोंमें वे 'सरकार ठाकुर' के नामसे प्रसिद्ध थे। पण्डित गोस्वामी (गदाधर पण्डित) के ये अत्यन्त ही कृपापात्र थे। वे इनके ऊपर बहुत प्यार करते थे।

श्रीनिवासजीने सरकार ठाकुरकी ख्याति तो सुन रक्खी थी, किन्तु उनके दर्शनोंका सौभाग्य उन्हें आजतक कभी प्राप्त नहीं हुआ था। इधर ठाकुर सरकारने भी बालक श्रीनिवासकी असाधारण प्रतिभा और प्रभुपरायणताकी प्रशंसा सुन रखी थी और वे उस होनहार बालकको देखनेके लिये लालायित भी थे। सहसा दोनोंकी रास्तेमें भेंट हो गयी। श्रीनिवासजीने श्रद्धा-भक्तिके सहित सरकार ठाकुरके चरणोंमें प्रणाम किया और सरकार ठाकुरने इन्हें प्रेमालिङ्गन प्रदान करके प्रभु-प्रेम-प्राप्तिका आशीर्वाद दिया। उन महापुरुषका आशीर्वाद पाकर श्रीनिवास अपनी ननसाल होकर लौट आये और अपने पितासे महाप्रभुकी लीलाओंको बड़े ही चावसे सुनने लगे। उन्होंने एक-एक करके प्रभुके सभी अन्तरङ्ग भक्तोंके संक्षिप्त चरित्र जान लिये।

कालकी गति विचित्र होती है, चैतन्यदासजीको ज्वर आने लगा और उसी ज्वरमें वे इस असार संसारको त्यागकर वैकुण्ठवासी बन गये। श्रीनिवास अब पितृहीन हो गये। लक्ष्मीप्रिया पतिके शोकमें दिन-रात रोने लगी।

श्रीनिवासजीके नाना श्रीबलरामाचार्यके कोई सन्तान नहीं थी, ये ही उनकी सम्पूर्ण सम्पत्तिके एकमात्र उत्तराधिकारी थे, अतः ये अपनी माताको लेकर जाजिग्राममें जाकर रहने लगे। इनकी बार-बार इच्छा होती थी कि सब कुछ छोड़-छाड़कर श्रीचैतन्य-चरणोंकी ही शरण लें, किन्तु स्नेहमयी माताके बन्धनके कारण वे ऐसा कर नहीं सकते थे, किन्तु एक बार पुरी चलकर उनके दर्शनोंसे तो इन नेत्रोंको कृतार्थ कर लें यह उनकी प्रबल वासना थी। जाजिग्रामकी भक्त-मण्डलीमें इनका अत्यधिक आदर था। इस अल्पावस्थामें ही इनकी ख्याति दूर-दूरतक फैल गयी थी। अतः इन्होंने अपनी इच्छा सरकार ठाकुरपर प्रकट की। सरकार ठाकुरने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—'तुम पुरी जाकर श्रीचैतन्य-चरणोंके दर्शन अवश्य करो। मैं तुम्हारे साथ एक आदमी किये देता हूँ।' यह कहकर उन्होंने एक आदमी इनके साथ कर दिया और ये उसके साथ पुरीकी ओर चल पड़े।

श्रीचैतन्यदेवके प्रेममें विभोर हुए ये अनेक बातें सोचते जाते थे कि 'श्रीचैतन्य-चरणोंमें जाकर यों प्रणत हूँगा, यों उनके प्रति अपना भक्ति-भाव प्रकट करूँगा। एक दिन स्वयं उन्हें अपने हाथोंसे बनाकर भिक्षा कराऊँगा।' श्रीचैतन्य-चरणोंके दर्शनोंकी उत्कट उत्कण्ठाके कारण ही उनके मनमें ऐसे भाव उठ रहे थे कि रास्तेमें उन्होंने एक बड़ा ही हृदय-विदारक समाचार सुना। 'जिनके दर्शनोंकी लालसासे हम पुरी जा रहे हैं, वे तो अपनी लीलाको संवरण कर चुके। चैतन्यदेव इस नश्वर शरीरको छोड़कर अपने नित्य-धामको चले गये।' इस समाचारको सुनते ही इनका हृदय फट गया, वे मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। बड़ी देरके पश्चात् इन्हें होश आया, तब दुःखित मनसे श्रीचैतन्यकी लीलास्थलीके दर्शनोंके ही निमित्त वे रोते-रोते आगे बढ़े।

पुरीमें जाकर उन्होंने देखा वह भरी-पूरी नगरी गौराङ्गके बिना श्रीहीन तथा विधवा स्त्रीकी भाँति निरानन्दपूर्ण बनी हुई है। सभी गौर-भक्त गौर-विरहमें तप्त मछलीकी भाँति तड़प रहे हैं। गौरने स्वप्नमें ही इन्हें गदाधर पण्डितके पास जानेका आदेश दे दिया था। पण्डित गोस्वामीकी ख्याति ये पहलेसे ही सुनते रहते थे। पुरीमें ये गदाधर गोस्वामीका पता पूछते-पूछते उनके आश्रममें पहुँचे। वहाँ उन्होंने विरह-वेदनामें बेचैन बैठे हुए पण्डित गोस्वामीको देखा। पण्डित गोस्वामी चैतन्य-विरहमें विक्षिप्त-से हो गये थे। उनके दोनों नेत्रोंसे सतत अश्रु प्रवाहित हो रहे थे। श्रीनिवासजी 'हा चैतन्य!' कहते-कहते उनके चरणोंमें गिर पड़े। आँसुओंके भरे रहनेके कारण पण्डित गोस्वामी श्रीनिवासजीको देख नहीं सके। उन्होंने अत्यन्त ही करुणस्वरमें कहा—'भैया! तुम कौन हो? इस सुमधुर नामको सुनाकर तुमने मेरे शिथिल अङ्गोंमें पुनः शक्तिका सञ्चार-सा कर दिया है। आज मेरे हृदयमें तुम्हारे इन सुमधुर वाक्योंसे बड़ी शान्ति-सी प्रतीत हो रही है। तुम श्रीनिवास तो नहीं हो।' दोनों हाथोंकी अञ्जलि बाँधे हुए श्रीनिवासजीने कहा—'प्रभो! इस अधम भाग्यहीनका ही नाम श्रीनिवास है। स्वामिन्! इस दीन-हीन कंगालका नाम आपको याद है, प्रभो! मैं बड़ा हतभागी हूँ कि इस जीवनमें श्रीचैतन्य-चरणोंके साक्षात् दर्शन न कर सका। महाप्रभु यदि स्वप्नमें मुझे आदेश न देते तो मैं उसी क्षण अपने प्राणोंको विसर्जन करनेका संकल्प कर चुका था। चैतन्यचरणोंके दर्शन बिना इस जीवनसे क्या लाभ!'

पण्डित गोस्वामीने उठकर श्रीनिवासजीका आलिङ्गन किया और उनके कोमल अंगपर अपना शीतल प्रेममय करकमल धीरे-धीरे फिराने लगे। उनके प्रेम-स्पर्शसे श्रीनिवासजीका सम्पूर्ण शरीर पुलकित

हो उठा। तब अधीरताके साथ पण्डित गोस्वामीने करुणकण्ठसे कहा—'श्रीनिवास! अब मैं भी अधिक दिनोंतक जीवित नहीं रह सकता। गौरके विरहमें मेरे प्राण तड़प रहे हैं। मैं तो उसी दिन समुद्रमें कूदकर इन प्राणोंका अन्त कर देता, किन्तु प्रभुकी आज्ञा थी कि मैं तुम्हें श्रीमद्भागवत पढ़ाऊँ। मेरी स्थिति अब पढ़ानेयोग्य तो रही नहीं, किन्तु महाप्रभुकी आज्ञा शिरोधार्य है। प्रभु तुम्हें वृन्दावनमें जाकर रूप-सनातनके ग्रन्थोंका अध्ययन करनेके लिये आदेश दे गये हैं। वे तुम्हारे द्वारा गौड़देशमें भक्तिका प्रचार कराना चाहते हैं। तुम अब आ गये, लाओ मैं प्रभुकी आज्ञाका पालन करूँ। इससे पहले तुम पुरीके सभी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध गौर-भक्तोंके दर्शन कर आओ।'

पण्डित गोस्वामीने अपना एक आदमी श्रीनिवासजीके साथ कर दिया। उसके साथ वे श्रीजगन्नाथजीके दर्शन करते हुए सार्वभौम भट्टाचार्य, राय रामानन्द आदि भक्तोंके दर्शनोंके लिये गये और उन सबकी चरण-वन्दना करके इन्होंने अपना परिचय दिया। सभीने इनके ऊपर पुत्रकी भाँति स्नेह प्रकट किया। इन सबसे विदा होकर फिर ये भक्त हरिदासजीकी समाधिके दर्शनोंके लिये गये। वहाँ हरिदासजीकी नामनिष्ठा और उनकी सहिष्णुताका स्मरण करके ये मूर्च्छित हो गये और घण्टों वहाँकी धूलिमें लोटते-लोटते अश्रुविमोचन करते रहे। श्रीचैतन्यकी सभी लीलास्थलियोंके दर्शन करके ये पुनः पण्डित गोस्वामीके समीप लौट आये। तब गदाधरजीने इन्हें महाप्रसादका भोजन कराया। भोजनके अनन्तर स्वस्थ होनेपर इन्होंने श्रीमद्भागवतके पाठकी जिज्ञासा की। गदाधर गोस्वामीके नेत्रोंसे जल निरन्तर बह रहा था। खाते-पीते, पढ़ते-लिखते हर समय उनका अश्रुप्रवाह जारी ही रहता। वे बड़े कष्टसे पोथीको श्रीनिवासजीको देकर पढ़ाने लगे।

श्रीनिवासजीने देखा। पोथीका एक भी अक्षर ठीक-ठीक नहीं पढ़ा जाता। सभी पृष्ठ पण्डित गोस्वामीके नेत्रोंके जलसे भीगे हुए हैं। निरन्तरके अश्रु-प्रवाहसे पोथीके सभी अक्षर मिटकर पृष्ठ काले रंगके बन गये हैं। श्रीनिवासजीने उसे पढ़नेमें अपनी असमर्थता प्रकट की। तब गदाधर गोस्वामीने कहा—'श्रीनिवास! अब मेरे जीनेकी तुम विशेष आशा मत रक्खो। संसार मुझे सूना-सूना दीखता है। हाय! जहाँ गौर नहीं, वहाँ मैं कैसे रह सकूँगा। मेरे प्राण गौर-दर्शनोंके लिये लालायित हो रहे हैं। यदि तुम पढ़ना ही चाहते हो तो आज ही तुम गौड़ चले जाओ। नरहरि सरकारके पास मेरे हाथकी लिखी हुई एक नयी पोथी है, उसे ले आओ। बहुत सम्भव है, मैं तुम्हें पढ़ा सकूँ।' श्रीनिवासजी समझ गये कि पण्डित गोस्वामीका शरीर अब अधिक दिनतक नहीं टिक सकता। वे उसी समय सरकार ठाकुरके समीपसे पोथी लानेके लिये चल पड़े। श्रीहट्टमें आकर उन्होंने सभी वृत्तान्त सरकार ठाकुरसे कहा और वे जल्दीसे पोथी लेकर पुरीके लिये चल दिये।

अभी वे पुरीके आधे ही मार्गमें पहुँचे थे कि उन्हें यह हृदयको हिला देनेवाला दूसरा समाचार मिला कि पण्डित गोस्वामीने गौर विरहकी अग्निमें अपने शरीरको जला दिया, वे इस संसारको छोड़कर गौरके समीप पहुँच गये। दुःखित श्रीनिवासके कलेजेमें सैकड़ों बर्छियोंके लगनेसे जितना घाव होता है, उससे भी बड़ा घाव हो गया। वे रो-रोकर भूमिपर लोटने लगे। 'हाय! उन महापुरुषसे मैं श्रीमद्भागवत भी न पढ सका। अब पुरी जाना व्यर्थ है।' यह सोचकर वे फिर गौड़की ही ओर लौट पड़े। वहाँ पानीहाटीसे कुछ दूरपर उन्होंने एक तीसरा हृदयविदारक समाचार सुना। एक मनुष्यने कहा—'महाप्रभुके

तिरोभावके अनन्तर श्रीपाद नित्यानन्दजीकी दशा विचित्र ही हो गयी थी। उन्होंने संकीर्तनमें जाना एकदम बंद कर दिया था, वे खड़दहके अपने मकानमें ही पड़े-पड़े 'हा गौर! हा गौर!' कहकर सदा रुदन किया करते थे। कभी-कभी कीर्तनके लिये उठते तो क्षणभरमें ही मूर्छित होकर गिर पड़ते और घण्टोंमें जाकर होशमें आते। सभी भक्त उनकी मनोव्यथाको समझते थे, इसलिये कोई उनसे संकीर्तनमें चलनेका आग्रह नहीं करता था। एक दिन वे श्यामसुन्दरके मन्दिरमें भक्तोंके साथ संकीर्तन कर रहे थे, संकीर्तन करते-करते ही वे अचेत होकर भूमिपर गिर पड़े। यह उनकी अचेतनता अन्तिम ही थी। भक्तोंने भाँति-भाँतिके यत्न किये किन्तु फिर वे सचेत नहीं हुए। वे गौरधाममें जाकर अपने भाई निमाईके साथ मिल गये।'

श्रीनिवासजीके ऊपर मानो वज्र गिर पड़ा हो, वे खिन्न-चित्तसे क्रन्दन करते-करते सरकार ठाकुरके समीप पहुँचे और रो-रोकर सभी समाचार सुनाने लगे। भक्तिभवनके इन प्रधान स्तम्भोंके टूट जानेसे भक्तोंको अपार दुःख हुआ। सरकार ठाकुर बच्चोंकी तरह ढाह मारकर रुदन करने लगे। श्रीनिवासजीके दोनों नेत्र रुदन करते-करते फूल गये थे। वे कण्ठ रुँध जानेके कारण कुछ कह भी नहीं सकते थे। सरकार ठाकुरने इन्हें कई दिनोंतक अपने ही यहाँ रक्खा। इसके अनन्तर वे घर नहीं गये। अब उनकी इच्छा श्रीचैतन्यकी क्रीड़ा-भूमिके दर्शनोंकी हुई। वे उसी समय सरकार ठाकुरसे विदा होकर नवद्वीपमें आये। उन दिनों विष्णुप्रियादेवीजी घोर तपस्यामय जीवन बिता रही थीं। वे किसीसे भी बातें नहीं करती थीं, किन्तु उन्हें स्वप्नमें श्रीगौराङ्गका आदेश हुआ कि 'श्रीनिवास हमारा ही अंश है, इससे मिलनेमें कोई क्षति नहीं। इसके ऊपर तुम कृपा करो।' तब उन्होंने श्रीनिवासजीको स्वयं बुलाया। वे इस छोटे बालकके ऐसे त्याग, वैराग्य, प्रेम और रूपलावण्यको देखकर

बड़ी ही प्रसन्न हुईं। प्रियाजीने इनके ऊपर परम कृपा प्रदर्शित की। इनसे बातें कीं, इनके मस्तकपर अपना पैर रक्खा और अपने घरके बाहरी दालानमें इन्हें कई दिनोंतक रक्खा।

जगन्माता विष्णुप्रियाजीसे विदा होकर ये शान्तिपुरमें अद्वैताचार्य-की जन्मभूमिको देखने गये। वहाँसे ये नित्यानन्दजीके घर खड़दहमें पहुँचे। वहाँ अवधूतकी पत्नी श्रीमती जाह्नवीदेवीने इनपर अपार प्रेम प्रदर्शित किया और कई दिनोंतक अपने घरमें ही इन्हें रक्खा। उन दोनों माताओंकी चरण-वन्दना करके ये खानाकुल कृष्णनगरके गोस्वामी अभिरामदासजीके दर्शनोंको गये। उन्होंने ही इन्हें वृन्दावनमें जाकर भक्ति-ग्रन्थोंके अध्ययन करनेकी अनुमति दी। उनकी आज्ञा शिरोधार्य करके ये अपनी मातासे आज्ञा लेकर काशी-प्रयाग होते हुए वृन्दावन पहुँचे। वहाँ जीव गोस्वामीने इनका बड़ा सत्कार किया। उन्होंने ही गोपाल-भट्टसे इन्हें मन्त्र-दीक्षा दिलायी। ये वृन्दावनमें ही रहकर श्रीरूप और सनातन आदि गोस्वामियोंके बनाये हुए भक्ति-शास्त्रोंका अध्ययन करने लगे। वहीं इनकी नरोत्तमदासजी तथा श्यामानन्दजीके साथ भेंट हुई और उन्हींके साथ ये गोस्वामियोंके ग्रन्थोंका अध्ययन करने लगे।

श्रीजीव गोस्वामीजीने जब समझ लिया कि ये तीनों ही योग्य बन गये हैं, तीनों ही तेजस्वी, मेधावी और प्रभावशाली हैं, तब इन्हें गौड़देशमें भक्तितत्त्वका प्रचार करनेके निमित्त भेजा। नरोत्तमदासजीको 'ठाकुर' की उपाधि दी और श्रीनिवासजीको आचार्यकी। भक्ति-ग्रन्थों-के बिना भक्ति-मार्गका यथाविधि प्रचार हो नहीं सकता। अतः जीव गोस्वामीने बहुत-से ग्रन्थोंको मोमजामेके कपड़ोंमें बँधवा-बँधवाकर तथा कई सुरक्षित संदूकोंमें बंद कराकर एक बैलगाड़ीमें लादकर इनके साथ भेजा। रक्षाके लिये साथमें दस अस्त्रधारी सिपाही भी कर दिये। तीनों

ही तेजस्वी युवक अपने आचार्यों तथा भक्तोंके चरणोंमें प्रणाम करके काशी-प्रयाग होते हुए गौड़देशकी ओर जाने लगे।

रास्तेमें बाँकुड़ा जिलेके अन्तर्गत वनविष्णुपुर नामकी एक छोटी-सी राजधानी पड़ती है, वहाँ पहुँचकर डाकुओंने इनकी सभी संदूकें छीन लीं और सभीको मार भगाया। इस बातसे सभीको अपार कष्ट हुआ। असलमें उस राज्यके शासक राजा वीरहम्मीर ही डाकुओंको उत्साहित कर दिया करते थे और उस गाड़ीको भी धन समझकर उन्होंने ही लुटवा लिया था। पुस्तकोंके लुट जानेसे दुःखी होकर श्रीनिवासजीने श्यामानन्दजीसे और नरोत्तम ठाकुरसे कहा—'आपलोग अपने-अपने स्थानोंको जाइये और आचार्यचरणोंकी आज्ञाको शिरोधार्य करके भक्तिमार्गका प्रचार कीजिये। मैं या तो पुस्तकोंको प्राप्त करके लौटूँगा या यहीं कहीं प्राण गँवा दूँगा।' बहुत कहने-सुननेपर वे दोनों आगेके लिये चले गये। श्रीनिवासजी वनविष्णुपुरमें घूम-घूमकर पुस्तकोंकी खोज करने लगे। दैवसंयोगसे उनका राजसभामें प्रवेश हो गया। राजा वीरहम्मीर श्रीमद्भागवतके बड़े प्रेमी थे, उनकी सभामें रोज कथा होती थी। एक दिन कथावाचक राज-पण्डितको अशुद्ध अर्थ करते देखकर इन्होंने उसे टोका, तब राजाने कुतूहलके साथ इनके मैले-कुचैले वस्त्रोंको देखकर इन्हींसे अर्थ करनेको कहा। बस, फिर क्या था, वे धाराप्रवाहरूपसे एक ही श्लोकके नाना भाँतिसे युक्ति और शास्त्रप्रमाणद्वारा विलक्षण-विलक्षण अर्थ करने लगे। इनके ऐसे प्रकाण्ड पाण्डित्यको देखकर सभी श्रोता मन्त्रमुग्ध-से बन गये। राजाने इनके चरणोंमें प्रणाम किया। पूछनेपर इन्होंने अपना सभी वृत्तान्त सुनाया। तब डबडबाई आँखोंसे राजा इन्हें भीतर ले गया और इनके पैरोंमें पड़कर कहने लगा—'आपका वह पुस्तकोंको लूटनेवाला डाकू मैं ही हूँ। ये आपकी पुस्तकें ज्यों-की-त्यों ही रक्खी हैं।' श्रीजीव

गोस्वामीकी दी हुई सभी वस्तुओंको सुरक्षित पाकर ये प्रेममें गद्‌गद होकर अश्रुविमोचन करने लगे, इन्होंने श्रद्धा-भक्तिके साथ उन पुस्तकों-को प्रणाम किया और अपने परिश्रमको सफल हुआ समझकर अत्यन्त ही प्रसन्न हो गये। उसी दिनसे राजाने वह कुत्सित कर्म एकदम त्याग दिया और वह इनका मन्त्रशिष्य बन गया।

वनविष्णुपुरके राजाका उद्धार करके फिर ये जाजिग्राममें अपनी माताके दर्शनोंके लिये आये। बहुत दिनोंके पश्चात् अपने प्यारे पुत्रको पाकर स्नेहमयी माताकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं रहा, वह प्रेममें गद्‌गद कण्ठसे रुदन करने लगी। आचार्य श्रीनिवास अब वहीं रहकर भक्ति-मार्गका प्रचार करने लगे। उनकी वाणीमें आकर्षण था, चेहरेपर तेज था, सभी वैष्णव इनका अत्यधिक आदर करते थे। वैष्णवसमाजके ये सम्माननीय अगणी समझे जाते थे। उन्चास वर्षकी अवस्थामें इन्होंने अपना पहला विवाह किया और कुछ दिनों बाद दूसरा विवाह भी कर लिया। इस प्रकार दो विवाह करनेपर भी ये विरक्तोंकी ही भाँति जीवन बिताने लगे। बीचमें ये एक बार पुनः अपने गुरुदेवके दर्शनोंके निमित्त वृन्दावन पधारे थे, तबतक इनके गुरु श्रीगोपाल भट्टका वैकुण्ठवास हो चुका था। कुछ दिन वृन्दावन रहकर ये पुनः गौड़देशमें आकर प्रचारकार्य करने लगे।

ठाकुर नरोत्तमदासजी

लोकनाथप्रियं धीरं लोकातीतं च प्रेमदम्।
श्रीनरोत्तमनामाख्यं तं विरक्तं नमाम्यहम्॥*

(प्र० द० ग्र०)

पद्मानदीके किनारेपर खेतरी नामकी एक छोटी-सी राजधानी है। उसी राज्यके स्वामी श्रीकृष्णानन्ददत्त मजूमदारके यहाँ नारायणीदेवीके गर्भसे ठाकुर नरोत्तमदासजीका जन्म हुआ। ये बाल्यकालसे ही विरक्त थे। घरमें अतुल ऐश्वर्य था, सभी प्रकारके संसारी सुख थे, किन्तु इन्हें

* श्रीलोकनाथ गोस्वामीके परम प्रिय शिष्य, महाधैर्यवान् और लोकातीत कर्म करनेवाले उन श्रीनरोत्तमदासजीके चरणोंमें मैं प्रणाम करता हूँ, जो राजपाटको छोड़कर विरक्त बनकर लोगोंको प्रेमदान देते रहे।

कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। ये वैष्णवोंके द्वारा श्रीगौराङ्गकी लीलाओंको श्रवण किया करते थे। श्रीरूप तथा सनातन और श्रीरघुनाथदासजीके त्याग और वैराग्यकी कथाएँ सुन-सुनकर इनका मन राज्य, परिवार तथा धन-सम्पत्तिसे एकदम फिर गया। ये दिन-रात श्रीगौराङ्गकी मनोहर मूर्तिका ही ध्यान करते रहे। सोते-जागते, उठते-बैठते इन्हें चैतन्यलीलाएँ ही स्मरण होने लगीं। घरमें इनका चित्त एकदम नहीं लगता था। इसलिये ये घरको छोड़कर कहीं भाग जानेकी बात सोच रहे थे। गौराङ्ग महाप्रभु तथा उनके बहुत-से प्रिय पार्षद इस संसारको त्यागकर वैकुण्ठवासी बन चुके थे। बालक नरोत्तमदास कुछ निश्चित न कर सके कि किसके पास जाऊँ। पण्डित गोस्वामी, स्वरूपदामोदर, नित्यानन्दजी, अद्वैताचार्य तथा सनातन आदि बहुत-से प्रभुपार्षद इस संसारको छोड़ गये थे। अब किसकी शरणमें जानेसे गौरप्रेमकी उपलब्धि हो सकेगी—इसी चिन्तामें ये सदा निमग्न रहते। एक दिन स्वप्नमें इन्हें श्रीगौराङ्गने दर्शन दिये और आदेश दिया कि 'तुम वृन्दावनमें जाकर लोकनाथ गोस्वामीके शिष्य बन जाओ।' बस, फिर क्या था, ये एक दिन घरसे छिपकर वृन्दावनके लिये भाग गये और वहाँ श्रीजीव गोस्वामीके शरणापन्न हुए। इन्होंने अपने स्वप्नका वृत्तान्त जीव गोस्वामीको सुनाया। इसे सुनकर उन्हें प्रसन्नता भी हुई और कुछ खेद भी। प्रसन्नता तो इनके राजपाट, धन-धान्य तथा कुटुम्ब-परिवारके परित्याग और वैराग्यके कारण हुई। खेद इस बातका हुआ कि लोकनाथ गोस्वामी किसीको शिष्य बनाते ही नहीं। शिष्य न बनानेका उनका कठोर नियम है।

श्रीलोकनाथ गोस्वामी और भूगर्भ गोस्वामी दोनों ही महाप्रभुके संन्यास लेनेसे पूर्व ही उनकी आज्ञासे वृन्दावनमें आकर चीरघाटपर एक कुञ्जकुटीर बनाकर साधन-भजन करते थे। लोकनाथ गोस्वामीका

वैराग्य बड़ा ही अलौकिक था। वे कभी किसीसे व्यर्थकी बातें नहीं करते। प्रायः वे सदा मौनी-से ही बने रहते। शान्त एकान्त स्थानमें वे चुपचाप भजन करते रहते, स्वतः ही कुछ थोड़ा बहुत प्राप्त हो गया, उसे पा लिया, नहीं तो भूखे ही पड़े रहते। शिष्य न बनानेका इन्होंने कठोर नियम कर रक्खा था, इसलिये आजतक इन्होंने किसीको भी मन्त्रदीक्षा नहीं दी थी। श्रीजीव गोस्वामी इन्हें लोकनाथ गोस्वामीके आश्रममें ले गये और वहाँ जाकर इनका उनसे परिचय कराया। राजा कृष्णानन्ददत्तके सुकुमार राजकुमार नरोत्तमदासके ऐसे वैराग्यको देखकर गोस्वामी लोकनाथजी अत्यन्त ही सन्तुष्ट हुए। जब इन्होंने अपनी दीक्षा-की बात कही तब उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि 'हमें तो गौरने आज्ञा नहीं दी। हमारा तो शिष्य न करनेका नियम है। तुम किसी और गुरुकी शरणमें जाओ।' इस उत्तरसे राजकुमार नरोत्तमदासजी हताश या निराश नहीं हुए, उन्होंने मन-ही-मन कहा—'मुझमें शिष्य बननेकी सच्ची श्रद्धा होगी तो आपको ही दीक्षा देनी होगी।' यह सोचकर ये छिपकर वहीं रहने लगे।

श्रीलोकनाथ गोस्वामी प्रातःकाल उठकर यमुनाजीमें स्नान करने जाते और दिनभर अपनी कुञ्जकुटीरमें बैठे-बैठे हरिनाम-जप किया करते। नरोत्तमदास छिपकर उनकी सेवा करने लगे। वे जहाँ शौच जाते, उस शौचको उठाकर दूर फेंक आते। जिस कँकरीले, पथरीले और कण्टकाकीर्ण रास्तेसे वे यमुनास्नान करने जाते उस रास्तेको खूब साफ करते। उसमेंके काँटेदार वृक्षोंको काटकर दूसरी ओर फेंक देते; वहाँ सुन्दर बालुका बिछा देते। कुञ्जको बाँध देते। उनके हाथ धोनेको नरम-सी सुन्दर मिट्टी लाकर रख देते। दोपहरको उनके लिये भिक्षा लाकर चुपके-से रख जाते। सारांश यह कि जितनी वे कर सकते थे और जो भी उनके सुखका उपाय सूझता उसे ही सदा करते रहते। इस प्रकार

उन्हें गुप्त रीतिसे सेवा करते हुए बारह-तेरह महीने बीत गये। जब सब बातें गोस्वामीजीको विदित हो गयीं तो उनका हृदय भर आया। अब वे अपनी प्रतिज्ञाको एकदम भूल गये, उन्होंने राजकुमार नरोत्तमको हृदयसे लगा लिया और उन्हें मन्त्र-दीक्षा देनेके लिये उद्यत हो गये। बात-की-बातमें यह समाचार सम्पूर्ण वैष्णवसमाजमें फैल गया। सभी आकर नरोत्तमदासजीके भाग्यकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। दीक्षातिथि श्रावणकी पूर्णिमा निश्चित हुई, उस दिन सैकड़ों विरक्त भक्त श्रीलोकनाथ गोस्वामीके आश्रमपर एकत्रित हो गये। जीव गोस्वामीने माला पहनाकर नरोत्तमदासजीको गुरुके चरणोंमें भेजा। गुरुने पहले उनसे कहा—'जीवनभर अविवाहित रहना होगा! सांसारिक सुखोंको एकदम तिलाञ्जलि देनी होगी! मांस-मछली जीवनमें कभी न खानी होगी!' नतमस्तक होकर नरोत्तमदासजीने सभी बातें स्वीकार कीं। तब गोस्वामीजीने इन्हें विधिवत् दीक्षा दी। नरोत्तम ठाकुरका अब पुनर्जन्म हो गया। उन्होंने श्रद्धा-भक्तिके सहित सभी उपस्थित वैष्णवोंकी चरण-वन्दना की। गुरुदेवकी पदधूलि मस्तकपर चढ़ायी और वे उन्हींकी आज्ञासे श्रीजीव गोस्वामीके समीप रहकर भक्तिशास्त्रकी शिक्षा प्राप्त करते रहे।

कालान्तरमें श्रीजीव गोस्वामीने इन्हें और श्यामानन्द तथा श्रीनिवासाचार्यको भक्तिमार्गका प्रचार करनेके निमित्त गौड़देशको भेजा। श्रीश्यामानन्दजीने तो अपनी प्रखर प्रतिभा और प्रबल पाण्डित्य तथा अलौकिक प्रभावके कारण सम्पूर्ण उड़ीसादेशको भक्ति-रसामृतमें प्लावित बना दिया। श्रीनिवासाचार्यने वैष्णवसमाजमें नवीन जागृति पैदा की और नरोत्तम ठाकुरने शिथिल होते हुए वैष्णवधर्मको फिरसे प्रभावान्वित बना दिया। बड़े पण्डित और भट्टाचार्य अपने ब्राह्मणपने-के अभिमानको छोड़कर कायस्थकुलोद्भूत श्रीनरोत्तम ठाकुरके मन्त्रशिष्य

बन गये। इनका प्रभाव सभी श्रेणीके लोगोंपर पड़ता था। इनके पिता भी इन्हें पूज्य दृष्टिसे देखते थे। उन्होंने इन्हींके आदेशानुसार श्रीगौराङ्ग महाप्रभुका एक बड़ा भारी मन्दिर बनवाया और उसमें श्रीगौराङ्ग और विष्णुप्रियाजीकी युगल मूर्तियोंकी स्थापना की गयी। इसके उपलक्ष्यमें एक बड़ा भारी महामहोत्सव किया और बहुत दिनोंतक निरन्तर कीर्तन-सत्सङ्ग होता रहा।

नरोत्तम ठाकुरका प्रभाव उन दिनों बहुत ही अधिक था, बड़े-बड़े राजे-महाराजे इनके मन्त्र-शिष्य थे। बड़े पण्डित इन्हें निःसङ्कोच भावसे साष्टाङ्ग प्रणाम करते। ये बँगला भाषाके सुकवि भी थे। इन्होंने गौरप्रेममें उन्मत्त होकर हजारों पदोंकी रचना की है। इनकी पदावलियोंका वैष्णवसमाजमें बड़ा आदर है। इन्होंने परमायु प्राप्त की थी। अन्तसमय ये गङ्गाजीके किनारे गम्भीला नामक ग्राममें अपने एक शिष्य गङ्गानारायण पण्डितके यहाँ चले गये।

कार्तिककी कृष्णा पञ्चमीका दिन था। प्रातःकाल ठाकुर महाशय अपने प्रिय शिष्य गङ्गानारायण पण्डित तथा रामकृष्णके साथ गङ्गा-स्नानके निमित्त गये। वे कमरतक जलमें चले गये और अपने शिष्योंसे कहा—'हमारे शरीरको तो थोड़ा मलो।' शिष्योंने गुरुदेवकी आज्ञाका पालन किया। देखते-ही-देखते ठाकुर महाशयका निर्जीव शरीर गङ्गामाताके सुशीतल जलमें गिरकर अठखेलियाँ करने लगा। नरोत्तम ठाकुर इस असार संसारको त्यागकर अपने सत्य और नित्य लोकको चले गये। वैष्णवोंके हाहाकारसे गङ्गाका किनारा गूँजने लगा। गङ्गामाताका हृदय भी अपने लाड़ले पुत्रके शोकसे उमड़ने लगा और वह भी अपनी मर्यादाको छोड़कर बढ़ने लगी।

महाप्रभुके वृन्दावनस्थ छः गोस्वामिगण

रुद्रोऽद्रिं जलधिं हरिर्दिविषदो दूरं विहायाश्रिताः
भोगीन्द्राः प्रबला अपि प्रथमतः पातालमूले स्थिताः।
लीना पद्मवने सरोजनिलया मन्येऽर्थिसार्थाद्भिया
दीनोद्धारपरायणाः कलियुगे सत्पूरुषाः केवलम् ॥*

(सु० र० भां० ७४। ४४)

महाप्रभु चैतन्यदेवके छः गोस्वामी अत्यन्त ही प्रसिद्ध हैं। उनके नाम (१)श्रीरूप, (२) श्रीसनातन, (३) श्रीजीव, (४) श्रीगोपाल,

---

* 'याचकोंका समूह मुझसे कुछ माँगने न लगे' इस भयसे भगवान् शंकर पर्वतपर रहने लगे, विष्णुने समुद्रमें डेरा डाला, समस्त देवताओंने सुदूरवर्ती आकाशकी शरण ली, वासुकि आदि नागराजोंने समर्थ होकर भी पहलेसे ही पातालमें अपना स्थान बना लिया है और लक्ष्मीजी कमलवनमें छिप गयीं। अब तो इस कलिकालमें केवल संत पुरुष ही दीनोंका उद्धार करनेवाले रह गये हैं।

भट्ट, (५) श्रीरघुनाथ भट्ट और (६) श्रीरघुनाथदासजी हैं। इन छहोंका थोड़ा-बहुत विवरण पाठक पिछले प्रकरणोंमें पढ़ ही चुके होंगे। श्रीरूप और सनातन तो प्रभुकी आज्ञा लेकर ही पुरीसे वृन्दावनको गये थे, बस तबसे वे फिर गौड़ देशमें नहीं लौटे। श्रीजीव इनके छोटे भाई अनूपके प्रिय पुत्र थे। पूरा परिवार-का-परिवार ही विरक्त बन गया। देवी परिवार था। जीव गोस्वामी या तो महाप्रभुके तिरोभाव होनेके अनन्तर वृन्दावन पधारे होंगे, या प्रभुके अप्रकट होनेके कुछ ही काल पहले। इनका प्रभुके साथ भेंट होनेका वृत्तान्त कहीं नहीं मिलता। ये नित्यानन्दजीकी आज्ञा लेकर ही वृन्दावन गये थे, इससे महाप्रभुका अभाव ही लक्षित होता है। रघुनाथ भट्टको प्रभुने स्वयं ही पुरीसे भेजा था। गोपाल भट्ट जब छोटे थे, तभी प्रभुने उनके घर दक्षिणकी यात्रामें चतुर्मास बिताया था, इसके अनन्तर पुनः इनको प्रभुके दर्शन नहीं हुए। रघुनाथदासजी प्रभुके लीलासंवरण करनेके अनन्तर और स्वरूपगोस्वामीके परलोक-गमनके पश्चात् वृन्दावन पधारे और फिर उन्होंने वृन्दावनकी पावन भूमि छोड़कर कहीं एक पैर भी नहीं रक्खा। व्रजमें ही वास करके उन्होंने अपनी शेष आयु व्यतीत की। इन सबका अत्यन्त ही संक्षेपमें पृथक्-पृथक् वर्णन आगे करते हैं।

१—श्रीरूपजी गोस्वामी

श्रीरूप और सनातनजीका परिचय पाठक पीछे प्राप्त कर चुके हैं, अनुमानसे श्रीरूपजीका जन्म संवत् १५४५ के लगभग बताया जाता है, ये अपने अग्रज श्रीसनातनजीसे साल-दो-साल छोटे ही थे, किन्तु प्रभुके प्रथम कृपापात्र होनेसे ये वैष्णव-समाजमें सनातनजीके बड़े भाई ही माने जाते हैं। रामकेलिमें इन दोनों भाइयोंकी प्रभुसे भेंट, रूपजीका प्रयागमें प्रभुसे मिलन, पुरीमें पुनः प्रभुके दर्शन-नाटकोंकी रचना, प्रभुकी आज्ञासे

प्रातःकाल ये उठकर उसी स्थानपर पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा—'एक गौ वहाँ खड़ी है और उसके स्तनोंमेंसे आप-से-आप ही दूध बहकर एक छिद्रमें होकर नीचे जा रहा है।' तब तो उनके आनन्दका ठिकाना नहीं रहा। ये उसी समय उस स्थानको खुदवाने लगे। उसमेंसे गोविन्द-देवजीकी मनमोहिनी मूर्ति निकली, उसे लेकर ये पूजा करने लगे। कालान्तरमें जयपुरके महाराज मानसिंहजीने गोविन्ददेवजीका लाल पत्थरों-का एक बड़ा ही भव्य और विशाल मन्दिर बनवा दिया जो अद्यावधि श्रीवृन्दावनकी शोभा बढ़ा रहा है। औरङ्गजेबके आक्रमणके भयसे जयपुरके महाराज पीछेसे यहाँकी श्रीमूर्तिको अपने यहाँ ले गये थे। पीछे फिर 'नये गोविन्ददेवजी' का नया मन्दिर बना, जिसमें गोविन्ददेव-जीके साथ ही अगल-बगलमें श्रीचैतन्यदेव और श्रीनित्यानन्दजीके विग्रह भी पीछेसे स्थापित किये गये, जो अब भी विद्यमान हैं।

जब श्रीरूपजी नन्दग्राममें निवास करते थे, तब श्रीसनातनजी एक दिन उनके स्थानपर उनसे मिलने गये। इन्होंने अपने अग्रजको देखकर उनको अभिवादन किया और बैठनेके लिये सुन्दर-सा आसन दिया। श्रीरूपजी अपने भाईके लिये भोजन बनाने लगे। उन्होंने प्रत्यक्ष देखा कि भोजनका सभी सामान प्यारीजी ही जुटा रही हैं, सनातनजीको इससे बड़ा क्षोभ हुआ। ये चुपचाप बैठे देखते रहे। जब भोजन बनकर तैयार हो गया तो श्रीरूपजीने उसे भगवान्‌के अर्पण किया, भगवान् प्यारीजीके साथ प्रत्यक्ष होकर भोजन करने लगे। उनका जो उच्छिष्ट महाप्रसाद बचा उसका उन्होंने श्रीसनातनजीको भोजन कराया। उसमें अमृतसे भी बढ़कर दिव्य स्वाद था। सनातनजीने कहा—'भाई! तुम बड़े भाग्यशाली हो, जो रोज प्यारी-प्यारेके अधरामृत-उच्छिष्ट अन्नका प्रसाद पाते हो, किन्तु सुकुमारी लाड़िलीजीको तुम्हारे सामान जुटानेमें कष्ट होता होगा, यही सोचकर मुझे दुःख होता है।' इतना कहकर

गौड़देश होते हुए पुनः वृन्दावनमें आकर निरन्तर वास करते रहनेके समाचार तो पाठक पिछले अध्यायोंमें पढ़ ही चुके होंगे, अब इनके वृन्दावनवासकी दो-चार घटनाएँ सुनिये।

आप ब्रह्मकुण्डके समीप निवास करते थे, एक दिन आप निराहार रहकर ही भजन कर रहे थे, भूख लग रही थी, किन्तु ये भजनको छोड़कर भिक्षाके लिये जाना नहीं चाहते थे, इतनेहीमें एक काले रंगका ग्वालेका छोकरा एक मिट्टीके पात्रमें दुग्ध लेकर इनके पास आया और बोला—'लो बाबा! इसे पी लो। भूखे भजन क्यों कर रहे हो, गाँवोंमें जाकर भिक्षा क्यों नहीं कर आते।' तुम्हें पता नहीं—

भूखे भजन न होई, यह जानहिं सब कोई।

रूपजीने वह दुग्ध पीया। उसमें अमृतसे भी बढ़कर स्वाद निकला। तब तो वे समझ गये कि 'साँवरे रंगका छोकरा वही छलिया वृन्दावन-वासी है, वह अपने राज्यमें किसीको भूखा नहीं देख सकता।' आश्चर्य-की बात तो यह थी कि जिस पात्रमें वह छोकरा दुग्ध दे गया था, वह दिव्य पात्र पता नहीं अपने-आप ही कहाँ चला गया। इस समाचारको सुनकर श्रीसनातनजी दौड़े आये और उन्हें आलिङ्गन करके कहने लगे—'भैया! यह मनमोहन बड़ा सुकुमार है, इसे कष्ट मत दिया करो। तुम स्वयं ही ब्रजवासियोंके घरोंसे टुकड़े माँग लाया करो।' उस दिनसे श्रीरूपजी मधुकरी भिक्षा नित्यप्रति करने जाने लगे।

एक दिन श्रीगोविन्ददेवजीने इन्हें स्वप्नमें आज्ञा दी कि 'भैया! मैं अमुक स्थानमें जमीनके नीचे दबा हुआ पड़ा हूँ। एक गौ रोज मुझे अपने स्तनोंमेंसे दूध पिला जाती है, तुम उस गौको ही लक्ष्य करके मुझे बाहर निकालो और मेरी पूजा प्रकट करो।'

प्रातःकाल ये उठकर उसी स्थानपर पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा—'एक गौ वहाँ खड़ी है और उसके स्तनोंमेंसे आप-से-आप ही दूध बहकर एक छिद्रमें होकर नीचे जा रहा है।' तब तो उनके आनन्दका ठिकाना नहीं रहा। ये उसी समय उस स्थानको खुदवाने लगे। उसमेंसे गोविन्द-देवजीकी मनमोहिनी मूर्ति निकली, उसे लेकर ये पूजा करने लगे। कालान्तरमें जयपुरके महाराज मानसिंहजीने गोविन्ददेवजीका लाल पत्थरों-का एक बड़ा ही भव्य और विशाल मन्दिर बनवा दिया जो अद्यापि श्रीवृन्दावनकी शोभा बढ़ा रहा है। औरङ्गजेबके आक्रमणके भयसे जयपुरके महाराज पीछेसे यहाँकी श्रीमूर्तिको अपने यहाँ ले गये थे। पीछे फिर 'नये गोविन्ददेवजी' का नया मन्दिर बना, जिसमें गोविन्ददेव-जीके साथ ही अगल-बगलमें श्रीचैतन्यदेव और श्रीनित्यानन्दजीके विग्रह भी पीछेसे स्थापित किये गये, जो अब भी विद्यमान हैं।

जब श्रीरूपजी नन्दग्राममें निवास करते थे, तब श्रीसनातनजी एक दिन उनके स्थानपर उनसे मिलने गये। इन्होंने अपने अग्रजको देखकर उनको अभिवादन किया और बैठनेके लिये सुन्दर-सा आसन दिया। श्रीरूपजी अपने भाईके लिये भोजन बनाने लगे। उन्होंने प्रत्यक्ष देखा कि भोजनका सभी सामान प्यारीजी ही जुटा रही हैं, सनातनजीको इससे बड़ा क्षोभ हुआ। वे चुपचाप बैठे देखते रहे। जब भोजन बनकर तैयार हो गया तो श्रीरूपजीने उसे भगवान्‌के अर्पण किया, भगवान् प्यारीजीके साथ प्रत्यक्ष होकर भोजन करने लगे। उनका जो उच्छिष्ट महाप्रसाद बचा उसका उन्होंने श्रीसनातनजीको भोजन कराया। उसमें अमृतसे भी बढ़कर दिव्य स्वाद था। सनातनजीने कहा—'भाई! तुम बड़े भाग्यशाली हो, जो रोज प्यारी-प्यारेके अधरामृत-उच्छिष्ट अन्नका प्रसाद पाते हो, किन्तु सुकुमारी लाड़िलीजीको तुम्हारे सामान जुटानेमें कष्ट होता होगा, यही सोचकर मुझे दुःख होता है।' इतना कहकर

श्रीसनातनजी चले गये और उनका जो उच्छिष्ट महा-महाप्रसाद शेष रहा उसको बड़ी ही रुचि और स्वादके साथ श्रीरूपजीने पाया।

किसी काव्यमें श्रीरूपजीने प्यारीजीकी वेणीकी काली नागिनसे उपमा दी थी। यह सोचकर सनातनजीको बड़ा दुःख हुआ कि भला प्यारीजीके अमृतपूर्ण आननके समीप विषवाली काली नागिनीका क्या काम! वे इसी चिन्तामें मग्न ही थे कि उन्हें सामनेके कदम्बके वृक्षपर प्यारेके साथ प्यारीजी झूलती हुई दिखायी दीं। उनके सिरपर काले रंगकी नागिन-सी लहरा रही थी, उसमें क्रूरताका काम नहीं, क्रोध और विषका नाम नहीं। वह तो परम सौम्या, प्रेमियोंके मनको हरनेवाली और चञ्चला-चपला बड़ी ही चित्तको अपनी ओर खींचनेवाली नागिन थी। श्रीसनातनजीको इससे बड़ी प्रसन्नता हुई और उनकी शङ्काका समाधान प्यारीजीने स्वतः ही अपने दुर्लभ दर्शनोंको देकर कर दिया।

इस प्रकार इनके भक्ति और प्रेमके माहात्म्यकी बहुत-सी कथाएँ कही जाती हैं। ये सदा युगल-माधुरीके रूपमें छके-से रहते थे। अके से, जके-से, भूले-से, भटके-से ये सदा वृन्दाविपिनकी वनवीथियोंमें विचरण किया करते थे। इनका आहार था प्यारे-प्यारीकी रूपसुधाका पान, बस उसीके मदमें ये सदा मस्त बने रहते। ये सदा प्रेममें मग्न रहकर नामजप करते रहते और शेष समयमें भक्तिसम्बन्धी पुस्तकोंका प्रणयन करते। इनके बनाये हुए भक्तिभावपूर्ण सोलह ग्रन्थ मिलते हैं।

(१) हंसदूत, (२) उद्धवसन्देश, (३) कृष्णजन्मतिथिविधि, (४) गणोद्देशदीपिका, (५) स्तवमाला, (६) विदग्धमाधव, (७) ललितामाधव, (८) दानलीला, (९) दानकेलिकौमुदी, (१०) भक्तिरसामृतसिन्धु, (११) उज्ज्वलनीलमणि, (१२) मथुरामाहात्म्य,

(१३) आख्यातचन्द्रिका, (१४) पद्यावली, (१५) नाटकचन्द्रिका और (१६) लघुभागवतामृत ।

वृन्दावनमें रहकर इन्होंने श्रीकृष्ण-प्रेमका साकार रूप खड़ा करके दिखला दिया । ये सदा नामसंकीर्तन और पुस्तक-प्रणयनमें ही लगे रहते थे । 'वृन्दावनकी यात्रा' नामक पुस्तकमें इनके वैकुण्ठवासकी तिथि संवत् १६४० (ईस्वी सन् १५६३) की श्रावण शुक्ला द्वादशी लिखी है । इस प्रकार ये लगभग ७४ वर्षोंतक इस धराधामपर विराजमान रहकर भक्तितत्त्वका प्रकाश करते रहे ।

२—श्रीसनातनजी गोस्वामी

श्रीसनातनजीका जन्म संवत् १५४४ के लगभग अनुमान किया जाता है, इनके कारावासका वृत्तान्त, उससे मुक्तिलाभ करके प्रयागमें आगमन, प्रभुके पादपद्मोंमें रहकर शास्त्रीय शिक्षाका श्रवण, वृन्दावन-गमन, पुनः लौटकर पुरीमें आगमन, शरीरमें भयंकर खुजलीका हो जाना, श्रीजगन्नाथजीके रथके नीचे प्राण त्यागनेका निश्चय, प्रभुकी आज्ञा-से वृन्दावनमें जाकर भजन और पुस्तकप्रणयन करते रहनेका वृत्तान्त तो पाठक पीछे पढ़ ही चुके होंगे, अब इनके सम्बन्धकी भी वृन्दावनकी दो-चार घटनाएँ सुनिये ।

एक दिन ये श्रीयमुनाजी स्नान करनेके निमित्त जा रहे थे, रास्तेमें एक पारस पत्थरका टुकड़ा इन्हें पड़ा हुआ मिला । इन्होंने उसे वहीं धूलिसे ढक दिया । दैवात् उसी दिन एक ब्राह्मण उनके पास आकर धनकी याचना करने लगा । इन्होंने बहुत कहा—'भाई ! हम भिक्षुक हैं, माँगकर टुकड़े खाते हैं, भला हमारे पास धन कहाँ है, किसी धनी सेठ साहूकारके समीप जाओ ।' किन्तु वह मानता ही नहीं था, उसने कहा—'श्रीमहाराज ! मैंने धनकी कामनासे ही अनेकों वर्षोंतक शिवकी

पारसमें अरु संतमें, संत अधिक कर मान।
वह लोहा सोना करै, यह करै आपु समान॥

ये मथुराजीमें मधुकरी करनेके लिये एक चौबेके घर जाया करते थे। उस चौबेकी स्त्री परम भक्ता और श्रीमदनमोहन भगवान्‌की उपासिका थी। उसके घर बालमायसे श्रीमदनमोहन भगवान् विराजते थे। सनातनजी उनकी मनोहर मूर्तिके दर्शनोंसे अत्यन्त ही प्रसन्न होते, असलमें तो ये मदनमोहनजीके दर्शनोंके ही लिये वहाँ जाते थे। उस चौबिनका एक छोटा-सा बालक था। मदनमोहन भी बालक ही ठहरे। दोनोंमें खूब दोस्ती थी। मदनमोहन तो गँवार ग्वाले ही ठहरे। ये आचार-विचार क्या जानें। उस चौबिनके लड़केके साथ ही एक पात्रमें भोजन करते। सनातनजीको देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि ये मदनमोहन सरकार बड़े विचित्र हैं।

एक दिन ये मधुकरी लेने गये। चौबिन इन्हें भिक्षा देने लगी। इन्होंने आग्रहपूर्वक कहा— 'माता! यदि तुम मुझे कुछ देना ही चाहती हो तो इस बच्चेका उच्छिष्ट अन्न मुझे दे दो।' चौबिनने इनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और इन्हें वही मदनमोहनका उच्छिष्ट प्रसाद दे दिया। बस, फिर क्या था, इन्हें तो उस माखनचोरकी लपलपाती जीभसे लगे हुए अन्नका चस्का लग गया, ये नित्यप्रति उसी उच्छिष्ट अन्नको लेने जाने लगे।

एक दिन स्वप्नमें मदनमोहनजीने कहा—'भाई! शहरमें तो हमें अच्छी मालूम पड़ती है, तुम उस चौबिनसे मुझे ले आओ, मैं तो जंगलमें ही रहूँगा।' ठीक उसी रात्रिको चौबिनको भी यही स्वप्न हुआ कि तू मुझे सनातन साधुको दे दे। दूसरे दिन ये गये और इन्होंने

आराधना की, इसलिये शिवजीने सन्तुष्ट होकर रात्रिके समय स्वप्नमें मुझसे कहा—'हे ब्राह्मण! तू जिस इच्छासे मेरा पूजन करता है, वह इच्छा तेरी वृन्दावनमें सनातन गोस्वामीके समीप जानेसे पूर्ण होगी।' बस, उन्हींके स्वप्नसे मैं आपकी शरण आया हूँ।' इसपर सनातनजीको उस पारस पत्थरकी याद आ गयी। उन्होंने कहा—'अच्छी बात है, मेरे साथ यमुनाजी चलो।' यह कहकर ये उसे यमुना-किनारे ले गये। दूरसे ही अँगुलीके इशारेसे इन्होंने उसे पारसकी जगह बता दी। उसने बहुत ढूँढ़ा; किन्तु पारस नहीं मिला। तब तो उसने कहा—'आप मेरी वञ्चना न कीजिये, यदि हो तो आप ही ढूँढ़कर दे दीजिये।'

इन्होंने कहा—'भाई! इसमें वञ्चनाकी बात ही क्या है, मैं तो उसका स्पर्श नहीं कर सकता, तुम धैर्यके साथ ढूँढ़ो, यहीं मिल जायगा।' ब्राह्मण ढूँढ़ने लगा, सहसा उसे पारसका टुकड़ा मिल गया। उसी समय उसने एक लोहेके टुकड़ेसे उसे छुआकर उसकी परीक्षा की, देखते-ही-देखते लोहेका टुकड़ा सोना बन गया। ब्राह्मण प्रसन्न होकर अपने घरको चल दिया।

वह आधे ही रास्तेमें पहुँचा होगा कि उसका विचार एकदम बदल गया। उसने सोचा—'जो महापुरुष घर-घरसे टुकड़े माँगकर खाते हैं और संसारमें इतनी अमूल्य समझी जानेवाली इस मणिको हाथसे स्पर्श नहीं करते। अवश्य ही उनके पास इस असाधारण पत्थरसे बढ़कर भी कोई और वस्तु है। मैं तो उनसे उसीको प्राप्त करूँगा। इस पारस-को देकर तो उन्होंने मुझे बहका दिया।' यह सोचकर वह लौटकर फिर इनके समीप आया और चरणोंमें गिरकर रो-रोकर अपनी सभी मनोव्यथा सुनायी। उसके सच्चे वैराग्यको देखकर इन्होंने पारसको यमुनाजीमें फेंकवा दिया और उसे अमूल्य हरिनामका उपदेश किया। जिससे कुछ कालमें वह परम संत बन गया। किसीने ठीक ही कहा है—

पारसमें अरु संतमें, संत अधिक कर मान।
वह लोहा सोना करै, यह करै आपु समान॥

ये मथुराजीमें मधुकरी करनेके लिये एक चौबेके घर जाया करते थे। उस चौबेकी स्त्री परम भक्ता और श्रीमदनमोहन भगवान्‌की उपासिका थी। उसके घर बालभावसे श्रीमदनमोहन भगवान् विराजते थे। सनातनजी उनकी मनोहर मूर्तिके दर्शनोंसे अत्यन्त ही प्रसन्न होते, असलमें तो वे मदनमोहनजीके दर्शनोंके ही लिये वहाँ जाते थे। उस चौबिनका एक छोटा-सा बालक था। मदनमोहन भी बालक ही ठहरे। दोनोंमें खूब दोस्ती थी। मदनमोहन तो गँवार ग्वाले ही ठहरे। ये आचार-विचार क्या जानें। उस चौबिनके लड़केके साथ ही एक पात्रमें भोजन करते। सनातनजीको देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि ये मदनमोहन सरकार बड़े विचित्र हैं।

एक दिन ये मधुकरी लेने गये। चौबिन इन्हें भिक्षा देने लगी। इन्होंने आग्रहपूर्वक कहा—'माता! यदि तुम मुझे कुछ देना ही चाहती हो तो इस बच्चेका उच्छिष्ट अन्न मुझे दे दो।' चौबिनने इनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और इन्हें वही मदनमोहनका उच्छिष्ट प्रसाद दे दिया। बस, फिर क्या था, इन्हें तो उस माखनचोरकी लपलपाती जीभसे लगे हुए अन्नका चस्का लग गया, ये नित्यप्रति उसी उच्छिष्ट अन्नको लेने जाने लगे।

एक दिन स्वप्नमें मदनमोहनजीने कहा—'भाई! शहरमें तो हमें जरा-सी मालूम पड़ती है, तुम उस चौबिनसे मुझे ले आओ, मैं तो जंगलमें ही रहूँगा।' ठीक उसी रात्रिको चौबिनको भी यही स्वप्न हुआ कि तू मुझे सनातन साधुको दे दे। दूसरे दिन ये गये और इन्होंने

कहा—'माताजी ! मदनमोहन अब वनमें रहना चाहते हैं, तुम्हारी क्या इच्छा है ?'

कुछ प्रेमयुक्त रोषके स्वरमें चौधिनने कहा—'साधु बाबा ! इसकी यह सब करतूत मुझे पहलेसे ही मालूम है। एक जगह रहना तो यह जानता ही नहीं, यह बड़ा निर्मोही है, कोई इसका सगा नहीं।' भला, जिस यशोदाने इसका लालन-पालन किया, खिला-पिलाकर इतना बड़ा किया, उसे भी घटाऊकी तरह छोड़कर चला गया। मुझसे भी कहता था—'मेरा यहाँ मन नहीं लगता।' मैंने भी सोच लिया—'मन नहीं लगता तो मेरी बलासे। जब तुझे ही मेरा मोह नहीं, तो मुझे भी तेरा मोह नहीं। भले ही तू साधुके साथ चला जा।' ऐसा कहते-कहते आँखोंमें आँसू भरकर उसने मदनमोहनको सनातनजीके साथ कर दिया। ऊपरसे तो वह ऐसी बातें कह रही थी, किन्तु उसका हृदय अपने मदनमोहनके विरहसे तड़फ रहा था। सनातनजी मदनमोहनको साथ लेकर यमुनाके किनारे आये। अब मदनमोहनके रहनेके लिये उन्होंने सूर्यघाटके समीप एक सुरम्य टीलेपर फूँसकी झोंपड़ी बना ली और उसीमें वे मदनमोहनकी पूजा करने लगे। अब वे घर-घरसे आटेकी चुटकी माँग लाते और उसीकी बिना नमककी मधुकरी बनाकर मदनमोहनको भोजन कराते।

एक दिन मदनमोहनने मुँह बनाकर कहा—'साधु बाबा ! ये बिना नमककी बाटियाँ हमसे तो खायी नहीं जातीं। थोड़ा नमक भी किसीसे माँग लाया करो।'

सनातनजीने झुँझलाकर कहा—'यह हठ मुझसे मत लगाओ, खानी हो तो ऐसी ही खाओ, नहीं अपने घरका रास्ता पकड़ो।'

मदनमोहन सरकारने कुछ हँसकर कहा—'एक फंकड़ी नमकको

कौन मना करेगा, कहींसे ले आना माँगकर ।' दूसरे दिनसे ये आटेके साथ थोड़ा नमक भी लाने लगे ।

चटोरे मदनमोहनको तो मीठे माखन और मिश्रीकी चाट पड़ी हुई थी, इसलिये एक दिन बड़ी ही दीनतासे बोले—'साधु बाबा ! ये रूखे टिक्कड़ तो हमारे गलेके नीचे नहीं उतरते । थोड़ा घी भी कहींसे लाया करो तो अच्छा है ।'

अब सनातनजी मदनमोहनजीको खरी-खरी सुनाने लगे । उन्होंने कहा—'देखो जी ! सुनो मेरी सच्ची बात । मेरे पास तो ये ही सूखे टिक्कड़ हैं, तुम्हें घी-चीनीकी चाट थी तो किसी धनिकके यहाँ जाते, मुझ भिक्षुकके यहाँ तो ये ही सूखे टिक्कड़ मिलेंगे । तुम्हारे गलेके नीचे उतरें चाहे न उतरें, मैं किसी धनिकके पास घी-बूरा माँगने नहीं जाऊँगा । थोड़े यमुना-जलके साथ सटक लिया करो । मिट्टी भी तो सटक जाते थे ।' बेचारे मदनमोहन अपना-सा मुँह बनाये चुप हो गये । उस लँगोटीबंद साधुसे वे और कह ही क्या सकते थे ।

दूसरे दिन उन्होंने देखा, एक बड़ा भारी धनिक व्यापारी उनके समीप आ रहा है । ये बैठे भजन कर रहे थे, उसने दूरसे ही इनके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम किया और बड़े ही करुणस्वरसे कहने लगा—'महात्माजी ! मेरा जहाज यमुनाजीमें अड़ गया है, ऐसा आशीर्वाद दीजिये कि वह निकल जाय, मैं आपकी शरणमें आया हूँ ।' इन्होंने कहा—'भाई ! मैं कुछ नहीं जानता, इस झोंपड़ीमें जो बैठा है, उससे कहो ।'

व्यापारीने भगवान् मदनमोहनसे प्रार्थना की—'हे भगवन् ! यदि मेरा जहाज निकल जाय, तो बिक्रीके आधे द्रव्यसे मैं आपकी सेवा करूँ ।' बस, फिर क्या था, जहाज उसी समय निकल गया । उन दिनों नदियोंके द्वारा नावसे ही व्यापार होता था । रेल, तार और

मोटर आदि यन्त्र तो तब थे ही नहीं। महाजनका माल दुगुने दामोंमें बिका। उसी समय उसने हजारों रुपये लगाकर बड़ी उदारताके साथ मदनमोहनजीका मन्दिर बनवा दिया। और भगवान्‌की सेवाके लिये पुजारी, रसोइया, नौकर-चाकर तथा और भी बहुत-से कामवाले रख दिये। वह मन्दिर वृन्दावनमें अभीतक विद्यमान है।

इनकी ख्याति सुननेपर अकबर बादशाह इनके दर्शनोंके लिये आया और इनसे कुछ सेवाके लिये प्रार्थना करने लगा। जब बहुत मना करनेपर भी वह न माना तब इन्होंने अपने कुटियाके समीपके यमुनाजीके फूटे हुए घाटके कोनेको सुधरवानेकी आज्ञा दी। उसी समय अकबरको वहाँकी सभी भूमि अमूल्य रत्नोंसे जटित दिखायी देने लगी। तब तो वह इनके पैरोंमें गिरकर कहने लगा—'प्रभो! मेरे अपराधको क्षमा कीजिये, मेरा सम्पूर्ण राज्य भी यहाँके एक रत्नके मूल्यके बराबर नहीं।' यही घटना श्रीहरिदास स्वामीजीके सम्बन्धमें भी कही जाती है, दोनों ही ठीक हैं। भक्तोंकी लीला अपरम्पार है, उन्हें श्रद्धापूर्वक सुन लेना चाहिये। तर्क करना हो तो दर्शनशास्त्रोंको पढ़ो।

इन्होंने भी भक्तितत्त्वकी खूब पर्यालोचना की है, इनके बनाये हुए चार ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—(१) बृहद्भागवतामृत (दो खण्ड), (२) हरिभक्तिविलास, टीकादिकप्रदर्शिनी, (३) वैष्णवतोषिणी (दशम स्कन्धकी टिप्पणी), (४) लीलास्तव (दशम चरित्र)।

सत्तर वर्षकी आयुमें सं० १६१५ (ईस्वी सन् १५५८) की आषाढ सुदी चतुर्दशीके दिन इनका गोलोकगमन बताया जाता है। ये परम वैनयी, भागवत और भगवत्-रस-रसिक वैष्णव थे।

३—श्रीजीव गोस्वामीजी

श्रीअनूप-तनय स्वामी श्रीजीवजीका वैराग्य परमोत्कृष्ट था। ये आजन्म ब्रह्मचारी रहे। स्त्रियोंके दर्शनतक नहीं करते थे। पिताके वैकुण्ठ-वास हो जानेपर और दोनों ताउओंके गृहत्यागी-विरागी बन जानेपर इन्होंने भी उन्हींके पथका अनुसरण किया और ये भी सब कुछ छोड़-छाड़कर श्रीवृन्दावनमें जाकर अपने पितृव्योंके चरणोंका अनुसरण करते हुए शास्त्र चिन्तन और श्रीकृष्ण-कीर्तनमें अपना समय बिताने लगे। ये अपने समयके एक नामी पण्डित थे। व्रजमण्डलमें इनकी अत्यधिक प्रतिष्ठा थी। देवताओंको भी अप्राप्य व्रजकी पवित्र भूमिको परित्याग करके ये कहीं भी किसीके आग्रहसे बाहर नहीं जाते थे। सुनते हैं, एक बार अकबर बादशाहने अत्यन्त ही आग्रहके साथ इन्हें आगरे बुलाया था और इनकी आज्ञानुसार ही उसने इन्हें घोड़ागाड़ीमें बैठाकर उसी दिन रात्रिको वृन्दावन पहुँचा दिया था। इनके सम्बन्धकी भी दो-एक घटना सुनिये—

सुनते हैं, एक बार कोई दिग्विजयी पण्डित दिग्विजयकी इच्छासे वृन्दावनमें आया। श्रीरूप तथा सनातनजीने तो उससे बिना शास्त्रार्थ किये ही विजयपत्र लिख दिया। किन्तु श्रीजीव गोस्वामी उससे भिड़ गये और उसे परास्त करके ही छोड़ा। इस समाचारको सुनकर श्रीरूप गोस्वामीने इन्हें डाँटा और यहाँतक कह दिया—'जो वैष्णव दूसरोंको मान नहीं देना जानता, वह सच्चा वैष्णव ही नहीं। हमें जय-पराजयसे क्या? तुम जयकी इच्छासे उससे भिड़ पड़े इसलिये अब हमारे सामने मत आना।' इससे इन्हें अत्यन्त ही दुःख हुआ और ये अनशन करके यमुना-किनारे जा बैठे। श्रीसनातनजीने जब यह समाचार सुना तो

उन्होंने रूप गोस्वामीके पास आकर पूछा—'वैष्णवोंको जीवके ऊपर दया करनी चाहिये अथवा अदया।'

श्रीरूपजीने कहा—'यह तो सर्वसम्मत सिद्धान्त है कि वैष्णवको जीवमात्रके प्रति दयाके भाव प्रदर्शित करने चाहिये।'

बस, इतना सुनते ही सनातनजीने जीव गोस्वामीजीको उनके पैरोंमें पड़नेका संकेत किया। जीव गोस्वामी अधीर होकर उनके पैरोंमें गिर पड़े और अपने अपराधको स्मरण करके बालकोंकी भाँति फूट-फूटकर रुदन करने लगे। श्रीरूपजीका हृदय भर आया, उन्होंने इन्हें हृदयसे लगाया और इनके अपराधको क्षमा कर दिया।

सुनते हैं, परम भक्ता मीराबाई भी इनसे मिली थीं। उन दिनों ये एकान्तमें वास करते थे और स्त्रियोंको इनके आश्रममें जानेकी मनाही थी। जब मीराबाईने इनसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की और उन्हें उत्तर मिला कि वे स्त्रियोंसे नहीं मिलते, तब मीराबाईजीने सन्देश पठाया—'वृन्दावन तो बाँकेविहारीका अन्तःपुर है। इसमें गोपिकाओंके सिवा किसी दूसरेका प्रवेश नहीं। ये विहारीजीके नये पट्टीदार पुरुष और कहाँसे आ बसे, इन्हें किसी दूसरे स्थानकी खोज करनी चाहिये।' इस बातसे इन्हें परम प्रसन्नता हुई और ये मीराबाईजीसे बड़े प्रेमसे मिले।

इन्होंने एक योग्य आचार्यकी भाँति भक्ति-मार्गका खूब ही प्रचार किया। अपने पितृव्योंकी भाँति इन्होंने भी बहुत-से ग्रन्थ बनाये। कृष्णदास गोस्वामीने इन तीनोंके ही ग्रन्थोंकी संख्या चार लाख बतायी है। यहाँ ग्रन्थसे तात्पर्य अनुष्टुप्छन्द या एक श्लोकसे है। पुस्तकसे नहीं। श्रीरूपके बनाये हुए सब एक लक्ष ग्रन्थ या श्लोक बताये जाते हैं। सब पुस्तकोंमें इतने श्लोक हो सकते हैं। श्रीजीव गोस्वामीके बनाये

हुए नीचे लिखे ग्रन्थ मिलते हैं—श्रीभागवत षट्सन्दर्भ, वैष्णवतोषिणी, लघुतोषिणी और गोपालचम्पू।

इनके वैकुण्ठवासकी ठीक-ठीक तिथि या संवत्का पता हमें किसी भी ग्रन्थसे नहीं चला।

४—श्रीरघुनाथदासजी गोस्वामी

श्रीरघुनाथदासजीका वैराग्य, गृहत्याग और पुरीनिवासका वृत्तान्त तो पाठक पढ़ ही चुके होंगे। महाप्रभु तथा श्रीस्वरूपगोस्वामीके तिरोभावके अनन्तर ये अत्यन्त ही दुखी होकर वृन्दावन चले आये। इनकी इच्छा थी कि हम गोवर्धनपर्वतसे कूदकर अपने प्राणोंको गँवा दें, किन्तु श्रीरूप-सनातन आदिके समझाने-बुझानेपर इन्होंने शरीरत्यागका विचार परित्याग कर दिया। ये राधाकुण्डके समीप सदा वास करते थे। कहते हैं, ये चौबीस घंटेमें केवल एक बार थोड़ा-सा मट्ठा पीकर ही रहते थे। ये सदा प्रेममें विभोर होकर 'राधे-राधे' चिल्लाते रहते। इनका जन्म-संवत् अनुमानसे १४१६ शकाब्द बताया जाता है, इन्होंने अपनी पूर्ण आयुका उपभोग किया। जब शकाब्द १५१२ में श्रीनिवासाचार्यजी गौड़देशको आ रहे थे, तब इनका जीवित रहना बताया जाता है। इनका त्याग-वैराग्य बड़ा ही अद्भुत और अलौकिक था। इन्होंने जीवनभर कभी जिह्वाका स्वाद नहीं लिया, सुन्दर वस्त्र नहीं पहने, और भी किसी प्रकारके संसारी सुखका उपभोग नहीं किया। लगभग सौ वर्षोंतक ये अपने त्याग-वैराग्यमय श्वासोंसे इस स्वार्थपूर्ण संसारके वायुमण्डलको पवित्रता प्रदान करते रहे। इनके बनाये हुए (१) स्तवमाला, (२) स्तावली और (३) श्रीदानचरित—ये तीन ग्रन्थ बताये जाते हैं। इनके समान त्यागमय जीवन किसका हो सकता है! राजपुत्र होकर भी इतना त्याग!

दास महाशय ! आपके श्रीचरणोंमें हमारे कोटि-कोटि प्रणाम हैं। प्रभो ! इस वासनायुक्त अधमके हृदयमें भी अपनी शक्तिका सञ्चार कीजिये।

५—श्रीरघुनाथ भट्ट

हम पहले ही बता चुके हैं, तपन मिश्रजीके सुपुत्र श्रीरघुनाथ भट्ट अपने माता-पिताके परलोकगमनके अनन्तर आठ महीने प्रभुके पादपद्मोंमें रहकर उन्हींकी आज्ञासे वृन्दावन जाकर रहने लगे थे। ये भागवतके बड़े भारी पण्डित थे, इनका स्वर बड़ा ही कोमल था। ये रूप गोस्वामीकी सभामें श्रीमद्भागवतकी कथा कहते थे। इनका जन्म-संवत् अनुमानसे १४२५ बताया जाता है। ये कितने दिनतक अपने कोकिल-कूजित कमनीय कण्ठसे श्रीमद्भागवतकी कूक मचाकर वृन्दावनको बारहों महीने वसन्त बनाते रहे, इसका ठीक-ठीक वृत्तान्त नहीं मिलता।

६—श्रीगोपाल भट्ट

ये श्रीरङ्गक्षेत्रनिवासी वेङ्कट भट्टके पुत्र तथा श्रीप्रकाशानन्दजी सरस्वतीके भतीजे थे। पिताके परलोकगमनके अनन्तर ये श्रीवृन्दावन-वास करनेके निमित्त चले आये। दक्षिण-यात्रामें जब ये छोटे थे तभी प्रभुने इनके ऊपर चौमासेके चार मास बिताये थे। उसके बाद इनकी फिर महाप्रभुसे भेंट नहीं हुई। इनके आगमनका समाचार श्रीरूप-सनातनजीने प्रभुके पास पठाया था, तब प्रभुने एक पत्र भेजकर रूप और सनातन इन दोनों भाइयोंको लिखा था कि उन्हें स्नेहसे अपने पास रखना और अपना सगा भाई ही समझना। महाप्रभुने अपने बैठनेका आसन और डोरी इनके लिये भेजी थी। इन दोनों प्रभु-प्रसादी अमूल्य वस्तुओंको पाकर ये परम प्रसन्न हुए। ध्यानके समय

ये प्रभुकी प्रसादी डोरीको सिरपर धारण करके भजन किया करते थे। इनके उपास्यदेव श्रीराधारमणजी थे।

सुनते हैं, इनके उपास्यदेव पहले शालग्रामके रूपमें थे, उन्हींकी ये सेवा-पूजा किया करते थे, एक बार कोई धनिक वृन्दावनमें आया। उसने सभी मन्दिरोंके ठाकुरोंके लिये सुन्दर वस्त्राभूषण प्रदान किये। इन्हें भी लाकर बहुत-से सुन्दर-सुन्दर वस्त्र और गहने दिये। वस्त्र और गहनोंको देखकर इनकी इच्छा हुई कि यदि हमारे भी ठाकुरजीके हाथ-पैर होते तो हम भी उन्हें इन वस्त्राभूषणोंको धारण कराते। बस, फिर क्या था। भगवान् तो भक्तके अधीन हैं, वे कभी भक्तकी इच्छाको अन्यथा नहीं करते। उसी समय शालग्रामकी मूर्तिमेंसे हाथ-पैर निकल आये और भगवान् श्रीराधारमण मुरलीधारी श्याम बन गये। भट्टजीकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं रहा। उन्होंने भगवान्‌को वस्त्राभूषण पहनाये और भक्तिभावसे उनकी स्तुति की। श्रीनिवासाचार्यजी इन्हींके शिष्य थे। इनके मन्दिरके पुजारी श्रीगोपालनाथदासजी भी इनके शिष्य थे। इनके परलोकगमनके अनन्तर श्रीगोपालनाथदासजी ही उस गद्दीके अधिकारी हुए। श्रीगोपालनाथदासजीके शिष्य श्रीगोपीनाथदासजीने अपने छोटे भाई दामोदरदासजीको शिष्य बनाकर उनसे विवाह करनेके लिये कह दिया। वर्तमान श्रीराधारमणजीके गोस्वामिगण इन्हीं श्रीदामोदरजी-के वंशज हैं। वृन्दावनमें श्रीराधारमणजीकी वही मनोहर मूर्ति अपने अद्भुत और अलौकिक प्रभावको धारण किये हुए अपने प्रिय भक्त श्रीगोपाल भट्टकी भक्ति और एकनिष्ठाकी घोषणा कर रही है। भक्त-वत्सल भगवान् क्या नहीं कर सकते।

श्रीकृष्ण ! गोविन्द ! हरे ! मुरारे !
हे नाथ ! नारायण ! वासुदेव !!

श्रीचैतन्य-शिक्षाष्टक

प्रेमोद्भावितहर्षेर्षोद्वेगदैन्यार्तिमिश्रितम् ।
लपितं गौरचन्द्रस्य भाग्यवद्भिर्निषेव्यते ॥*
(श्रीचैतन्य चरि० अ० लो० २० । १)

महाप्रभु श्रीगौराङ्गदेवने संन्यास लेनेके अनन्तर अपने हाथसे किसी भी ग्रन्थकी रचना नहीं की। उन्हें इतना अवकाश ही कहाँ था, वे तो सदा प्रेमवारुणी पान करके पागल-से बने रहते थे। ऐसी दशामें पुस्तक-प्रणयन करना उनके लिये अशक्य था। किन्तु उनके भक्तोंने उनके उपदेशामृतके आधारपर अनेक ग्रन्थोंकी रचना कर डाली। व्यास, वाल्मीकि, शंकर, रामानुज आदि बहुत-से महापुरुष अपनी अमर कृतिसे ही अन्धे हुए संसारको दिव्यालोक प्रदान करते हैं। दत्तात्रेय, जड़भरत, ऋषभदेव, अजगरमुनि आदि बहुत-से सिद्ध महापुरुष अपने लोकातीत आचरणोंद्वारा ही संसारको त्याग, वैराग्य और भोगोंकी अनित्यताका पाठ पढ़ाते हैं।

* श्रीगौराङ्ग प्रभुके प्रेमवश प्रकट हुए हर्ष, ईर्षा, उद्वेग, दैन्य और आर्ति आदि भावोंसे मिश्रित प्रलापको भाग्यवान् पुरुष ही श्रवण कर पाते हैं।

बुद्धदेव, कबीरदास और परमहंस रामकृष्णदेव-जैसे बहुत-से परोपकारी महापुरुष अपनी अमोघ वाणीके ही द्वारा संसारका कल्याण करते हैं। श्रीचैतन्यदेवने तो अपने जीवनको ही प्रेमका साकार स्वरूप बनाकर मनुष्योंके सम्मुख रख दिया। चैतन्य-चरित्रकी मनुष्य ज्यों-ज्यों आलोचना और प्रत्यालोचना करेंगे, त्यों-ही-त्यों वे शास्त्रीय सिद्धान्त साम्प्रदायिक, संकुचित सीमासे निकलकर संसारके सम्मुख सार्वदेशिक बन सकेंगे। चैतन्यदेवने किसी नये धर्मकी रचना नहीं की। संन्यासधर्म या त्याग-धर्म जो ऋषियोंका सनातन धर्म है, उसीके वे शरणापन्न हुए और संसारके सम्मुख महान् त्यागका एक सर्वोच्च आदर्श उपस्थित करके लोगोंको त्यागका यथार्थ मर्म सिखा दिया। समयके प्रभावसे ज्ञानमार्गमें जो शुष्कता आ गयी थी, संसारको असार बताते-बताते जिनका हृदय भी सारहीन और शुष्क बन गया था, उसी शुष्कताको उन्होंने मेटकर त्यागके साथ सरलताका भी सम्मिश्रण कर दिया। उस त्यागमय प्रेमने सोनेमें सुहागेका काम दिया। यही श्रीचैतन्यका मैंने सार सिद्धान्त समझा है। किन्तु मैं अपनी मान्यताके लिये अन्य किसीको बाध्य नहीं करता। पाठक, स्वयं चैतन्यचरित्रका अध्ययन करें और यथामति उनके सार सिद्धान्तका स्वयं ही पता लगानेका प्रयत्न करें। महाप्रभुने समय-समयपर आठ श्लोक कहे हैं। वे सब महाप्रभुरचित ही बताये जाते हैं। वैष्णवमण्डलीमें ये आठ श्लोक 'शिक्षाष्टक' के नामसे अत्यन्त ही प्रसिद्ध हैं। उनपर बड़ी टीका-टिप्पणियाँ भी लिखी गयी हैं। ग्रन्थके अन्तमें उन आठ श्लोकोंको अर्थसहित देकर हम इस ग्रन्थको समाप्त करते हैं। जो 'श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली' को आदिसे अन्ततक पढ़ेंगे वे परम भागवत तथा प्रेमी तो अवश्य ही होंगे, यदि न भी होंगे तो इस चारु चरित्रके पठन और चिन्तनसे अवश्य ही वे प्रेमदेवकी मनमोहिनी मूर्तिके अनन्य उपासक बन जायँगे। चैतन्य-चरितावलीरूपी रसभरी

धाराने हमारे और पाठकोंके बीचमें एक प्रकारका सम्बन्ध स्थापित कर दिया है। चाहे हमारा 'चैतन्य-चरितावली' के सभी पाठकोंसे शरीर-सम्बन्ध न भी हो, किन्तु मानसिक सम्बन्ध तो उसी दिन जुड़ चुका जिस दिन उन्होंने अचैतन्य जगत्‌को छोड़कर चैतन्य-चरित्रकी खोज की। उन सभी प्रेमी बन्धुके श्रीचरणोंमें हृदयसे इस हृदयहीन नीरस लेखककी यही प्रार्थना है कि आपलोग कृपा करके अपने प्रेमका एक-एक कण भी इस दीन-हीन कंगालको प्रदान कर दें तो इसका कल्याण हो जाय। कहावत है—

'बूँद-बूँदसे घट भरै, टपकत रीतो होय।'

—बस, प्रत्येक पाठक हमारे प्रति थोड़ा भी प्रेम प्रदर्शित करनेकी कृपा करें तो हमारा यह रीता घड़ा परिपूर्ण हो जाय। क्या उदार और प्रेमी पाठक इतनी भिक्षा हमें दे सकेंगे? यह हम हृदयसे कहते हैं, हमें धनकी या और किसी सांसारिक उपभोगोंकी अभी तो इच्छा प्रतीत होती नहीं। आगेकी वह सॉवला जाने। अच्छे-अच्छोंको लाकर फिर उसने इसी मायाजालमें फँसा दिया है, फिर हम-जैसे कीट-पतङ्गोंकी तो गणना ही क्या! उसे तो अभीतक देखा ही नहीं। शास्त्रोंसे यह बात सुनी है कि प्रेमी भक्त ही उसके स्वरूप हैं, इसीलिये उनके सामने अकिञ्चन भिखारीकी तरह हम पल्ला पसारकर भीख माँग रहे हैं। हमें यह भी विश्वास है कि इतने बड़े दाताओंके दरवाजोंसे हम निराश होकर न लौटेंगे, अवश्य ही हमारी झोलीमें वे कुछ-न-कुछ तो डालेंगे ही। भीख माँगनेवाला कोई गीत गाकर या कुछ कहकर ही दाताओंके चित्तको अपनी ओर खींचकर भीख माँगता है। अतः हम भी चैतन्योक्त इन आठ श्लोकोंको ही कहकर पाठकोंसे भीख माँगते हैं।

(१)

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम् ।
आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम् ॥

जो चित्तरूपी दर्पणके मैलको मार्जन करनेवाला है, जो संसार-रूपी महादावाग्निको शान्त करनेवाला है, प्राणियोंको मङ्गलदायिनी कैरव चन्द्रिकाको वितरण करनेवाला है, जो विद्यारूपी वधूका जीवन-स्वरूप है और आनन्दरूपी समुद्रको प्रतिदिन बढ़ानेहीवाला है उस श्रीकृष्णसंकीर्तनकी जय हो, जय हो !

श्रीकृष्ण ! गोविन्द ! हरे ! मुरारे !
हे नाथ ! नारायण ! वासुदेव !

(२)

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पितानियमितः स्मरणेन कालः ।
एतादृशी तव कृपा भगवन् ममापि
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः ॥

प्राणनाथ ! तुम्हारी कृपामें कुछ कसर नहीं और मेरे दुर्भाग्यमें कुछ सन्देह नहीं । भला, देखो तो सही तुमने 'नन्द-नन्दन' 'व्रजचन्द्र' 'मुरलीमनोहर' 'राधारमण' ये कितने सुन्दर-सुन्दर कानोंको प्रिय लगनेवाले अपने मनोहारी नाम प्रकट किये हैं, फिर वे नाम रीते ही हों सो बात नहीं, तुमने अपनी सम्पूर्ण शक्ति सभी नामोंमें समानरूपसे भर दी है । जिसका भी आश्रय ग्रहण करें, उसीमें तुम्हारी पूर्ण शक्ति मिल जायगी ।

सम्भव है, वैदिकक्रिया-कलापोंकी भाँति तुम उनके लेनेमें कुछ देश, काल और पात्रका नियम रख देते तो इसमें कुछ कठिनता होनेका भय भी था, सो तुमने तो इन बातोंका कोई भी नियम निर्धारित नहीं किया। स्त्री हो, पुरुष हो, द्विज हो, अन्त्यज हो, शूद्र हो, अनार्य हो, कोई भी क्यों न हो, सभी प्राणी शुचि-अशुचि किसीका भी विचार न करते हुए सभी अवस्थाओंमें, सभी समयोंमें सर्वत्र उन सुमधुर नामोंका संकीर्तन कर सकते हैं। हे भगवन्! तुम्हारी तो जीवोंके ऊपर इतनी भारी कृपा और मेरा ऐसा भी दुर्दैव कि तुम्हारे इन सुमधुर नामोंमें सच्चे हृदयसे अनुराग ही उत्पन्न नहीं होता।

श्रीकृष्ण! गोविन्द! हरे! मुरारे!
हे नाथ! नारायण! वासुदेव!

(२)

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

हरिनामसंकीर्तन करनेवाले पुरुषको किस प्रकारके गुरु बनाने चाहिये और दूसरोंके प्रति उसका व्यवहार कैसा होना चाहिये, इसको कहते हैं—'भागवत बननेवालेको मुख्यतया दो गुरु बनाने चाहिये—एक तो तृण और दूसरा वृक्ष।' तृणसे तो नम्रताकी दीक्षा ले, तृण सदा सबके पैरोंके नीचे ही पड़ा रहता है। कोई दयालु पुरुष उसे उठाकर आकाशमें चढ़ा भी देते हैं, तो वह फिर ज्यों-का-त्यों ही पृथ्वीपर आकर पड़ जाता है। वह स्वप्नमें भी किसीके सिरपर चढ़नेकी इच्छा नहीं करता। तृणके अतिरिक्त दूसरे गुरु 'वृक्ष' से 'सहिष्णुता' की दीक्षा लेनी चाहिये। सुन्दर वृक्षका जीवन परोपकारके ही लिये होता है। वह भेद-भाव शून्य होकर समानभावसे सभीकी सेवा करता रहता है।

जिसकी इच्छा हो वही उसकी सुखद शीतल सघन छायामें आकर अपने तनकी ताप बुझा ले। जो उसकी शाखाओंको काटता है, उसे भी वह वैसी ही शीतलता प्रदान करता है और जो जल तथा खादसे उसका सिञ्चन करता है, उसको भी वैसी ही शीतलता। उसके लिये शत्रु-मित्र दोनों समान हैं। उसके पुष्पोंकी सुगन्धि जो भी उसके पास पहुँच जाय, वही ले सकता है। उसके गोंदको जो चाहे छुटा लावे। उसके कच्चे-पके फलोंको जिसकी इच्छा हो, वही तोड़ लावे। वह किसीसे भी मना नहीं करेगा। दुष्ट स्वभाववाले पुरुष उसे खूब फलोंसे समृद्ध देखकर दाह करने लगते हैं और ईर्ष्यावश उसके ऊपर पत्थर फेंकते हैं किन्तु वह उनके ऊपर तनिक भी रोष नहीं करता, उलटे उसके पास यदि पके फल हुए तो सर्वप्रथम तो प्रहार करनेवालेको पके ही फल देता है, यदि पके फल उस समय न मौजूद हुए तो कच्चे ही देकर अपने अपकारीके प्रति प्रेमभाव प्रदर्शित करता है। दुष्ट स्वभाववाले उसीकी छायामें बैठकर शान्तिलाभ करते हैं, पीछेसे उसकी सीधी शाखाओंको काटनेकी इच्छा करते हैं। वह बिना किसी आपत्तिके अपने शरीरको कटाकर उनके कामोंको पूर्ण करता है। उस गुरुसे सहिष्णुता सीखनी चाहिये।

मान तो मृगतृष्णाका जल है, इसलिये मानके पीछे जो पड़ा, वह प्यासे हिरणकी भाँति सदा तड़फ-तड़फकर ही मरता है, मानका कहीं अन्त नहीं, ज्यों-ज्यों आगेको बढ़ते चलो त्यों-ही-त्यों वह वालुकामय जल और अधिक आगे बढ़ता चलेगा। इसलिये वैष्णवको मानकी इच्छा कभी न करनी चाहिये, किन्तु दूसरोंको सदा मान प्रदान करते रहना चाहिये। सम्मानरूपी सम्पत्तिकी अनन्त खानि भगवान्‌ने हमारे हृदयमें दे रक्खी है। जिसके पास धन है और वह धनकी आवश्यकता रखनेवाले व्यक्तिको उसके माँगनेपर नहीं देता, तो वह 'कंजूस' कहलाता है।

इसलिये सम्मानरूपी धनको देनेमें किसीके साथ कंजूसी न करनी चाहिये। तुम परम उदार बनो, दोनों हाथोंसे सम्पत्तिको लुटाओ, जो तुमसे मानकी इच्छा रक्खें उन्हें तो मान देना ही चाहिये, किन्तु जो न भी माँगें उन्हें भी बस भर-भरकर देते रहो। इससे तुम्हारी उदारतासे सर्वान्तर्यामी प्रभु अत्यन्त ही प्रसन्न होंगे। सभीमें उसी प्यारे प्रभुका रूप देखो। सभीको उनका ही विग्रह समझकर नम्रतापूर्वक प्रणाम करो। ऐसे बनकर ही इन सुमधुर नामोंके संकीर्तन करनेके अधिकारी बन सकते हो—

श्रीकृष्ण ! गोविन्द ! हरे ! मुरारे !
हे नाथ ! नारायण ! वासुदेव !

(४)

न धनं न जनं न सुन्दरीं
कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे
भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि॥

संसारमें सब सुखोंकी खानि धन है। जिसके पास धन है, उसे किसी बातकी कमी नहीं। धनी पुरुषके पास गुणी, पण्डित तथा भाँति-भाँतिकी कलाओंके कोविद आप-से-आप ही आ जाते हैं। धनसे भी बढ़कर शक्तिशालिनी जन सम्पत्ति है। जिसकी आज्ञामें दस आदमी हैं। जिसके कहनेसे अनेकों आदमी क्षणभरमें रक्त बहा सकते हैं, वह अच्छे-अच्छे धनिकोंकी भी परवा नहीं करता। पैसा पास न होनेपर भी अच्छे-अच्छे लखपती-करोड़पती उससे थर-थर काँपते हैं। उस जनशक्तिसे भी बढ़कर आकर्षक सुन्दरी है। सुन्दरी संसारमें किसके मनको आकर्षित नहीं कर सकती। अच्छे-अच्छे करोड़पतियोंके कुमार सुन्दरीके तनिक-से कटाक्षपर लाखों रुपयोंको पानीकी तरह बहा देते हैं।

हजारों वर्षोंकी सञ्चित की हुई दरिद्रताको अनेकों तरस्वीगण उसकी टेढ़ी भौंहके ऊपर वार देनेको बाध्य होते हैं। धनी हो चाहे गरीब, पण्डित हो चाहे मूर्ख, शूरवीर हो अथवा निर्बल, जिसके ऊपर भी भौंहरूपी कमानसे कटाक्षरूपी बानको खींचकर सुन्दरीने एक बार मार दिया प्रायः वह मूर्छित हो ही जाता है। तभी तो राजर्षि भर्तृहरिने कहा है 'कन्दर्पदर्प-दलने विरला मनुष्याः' अर्थात् कामदेवके मदको चूर्ण करनेवाले इस संसारमें विरले ही मनुष्य हैं। कामदेवकी सहचरी सेनानायिका सुन्दरी ही है। उस सुन्दरीसे भी बढ़कर कविता है। जिसको कवितासुन्दरीने अपना कान्त कहकर वरण कर लिया है, उसके मन त्रैलोक्यकी सम्पत्ति भी तुच्छ है। वह धनहीन होनेपर भी शाहंशाह है। प्रकृति उसकी मोल ली हुई चेरी है। वह राजा है, महाराजा है, देव है और विधाता है। इस संसारमें कमनीय कवित्व-शक्ति किसी विरले ही भाग्यवान् पुरुषको प्राप्त हो सकती है। किन्तु प्यारे! मैं तो धन, जन, सुन्दरी तथा कविता इनमेंसे किसी भी वस्तुकी आकांक्षा नहीं रखता। तब तुम पूछोगे—'तो तुम और चाहते ही क्या हो।' इसका उत्तर यही है कि हे जगदीश! मैं कर्मबन्धनोंको मेटनेकी प्रार्थना नहीं करता। मेरे प्रारब्धको मिटा दो ऐसी भी आकांक्षा नहीं रखता। भले ही मुझे चौरासी लाख क्या चौरासी अरब योनियोंमें भ्रमण करना पड़े, किन्तु प्यारे प्रभो! तुम्हारी स्मृति हृदयसे न भूले। तुम्हारे पुनीत पाद-पद्मोंका ध्यान सदा अक्षुण्ण भावसे ज्यों-का-त्यों ही बना रहे। तुम्हारे प्रति मेरी अहैतुकी भक्ति उसी प्रकार बनी रहे। मैं सदा चिल्लाता रहूँ—

श्रीकृष्ण! गोविन्द! हरे! मुरारे!
हे नाथ! नारायण! वासुदेव!

१)

(किङ्करं

अयि नन्दतनूज किं विषमे भवाम्बुधौ।
पतितं मां पादपङ्कज-
कृपया तव शब्दं विचिन्तय ॥

स्थितधूली

है। मुझे इसमें तुमने क्यों फेंक दिया, यह संसार समुद्रके समान दुस्तर नहीं। मैं अपने कर्मोंके अधीन हे नाथ! इसकी मुझे कोई शिका बार-बार डूबता हूँ और फिर तुम्हारी होकर ही इसमें गोते लगा रहा हूँ। हूँ। इस अथाह सागरके सम्बन्धमें करुणाके सहारे ऊपर तैरने लगता इतना गहरा है, किन्तु हे मेरे रमण! मैं कुछ भी नहीं जानता कि यह कितक गया हूँ। कभी-कभी खारा पानी मैं इसमे डुबकियाँ मारते-मारते मे लगती है। कभी कानोंमे पानी भर मुँहमें चला जाता है, तो कै-सी हो। जलसे चिरचिराने लगती हैं। कभी-जाता है, तो कभी आँखें ही नमकीन जाता है। हे मेरे मनोहर मल्लाह! कभी नाकमें होकर भी जल च अपना नौकर जानकर, सेवक समझकर हे मेरे कोमलप्रकृति केवट! मुझे चालेके छोकरे हो न, बड़े चपल हो। कहीं बैठनेका स्थान दो। तुम तो मैं बैठनेके लिये तुझे स्थान कहाँ दूँ। पूछ सकते हो, 'इस अथाह जलमें मैं तुम्हें बिठा दूँ।' तो हे मेरे रसिक-मेरे पास नाव भी तो नहीं जिसमें ता, तुम्हें भुलाता नहीं, सुझाता हूँ। शिरोमणि! मैं चालाकी नहीं क जलमें रहनेपर भी नहीं डूबता और तुम्हारे पास एक ऐसा स्थान है, जो हुओंको आश्रय दे रक्खा है। तुम्हारे उसमें तुमने मुझ-जैसे अनेकों डूबते मल हैं, ये तो जलमें ही रहनेके आदी ये अरुण वर्णके जो कोमल चरणक कण जलमें रहते हुए भी निश्चिन्त हैं। इन कमलोंमें सैकड़ों धूलिके नन्दजीके लाड़िले लाल! उन्हीं धूलि-रूपसे बिना डूबे ही बैठे हैं। हे मुझे भी उन पावन पद्मोंमें रेणु बनाकर कणोंमें मेरी भी गणना कर लो। मु

बिठा लो। वहाँ बैठकर मैं तुम्हारी धीरे-धीरे पैर हिलानेकी क्रीड़ाके साथ थिरक-थिरककर सुन्दर स्वरसे इन नामोंका गायन करता रहूँगा—

श्रीकृष्ण ! गोविन्द ! हरे ! मुरारे !
हे नाथ ! नारायण् ! वासुदेव !

(६)

नयनं गलदश्रुधारया
वदनं गद्गदरुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा
तव नामग्रहणे भविष्यति॥

प्यारे! मैंने ऐसा सुना है कि आँसुओंके भीतर जो सफेद-सफेद काँचका-सा छोटा-सा घर दीखता है, उसीके भीतर तुम्हारा घर है। तुम सदा उसीमें वास करते हो। यदि यह बात ठीक है, तब तो प्रभो! मेरा नाम लेना व्यर्थ ही है। मेरी आँखें आँसू तो बहातीं ही नहीं, तुम तो भीतर ही छिपे बैठे रहते होगे। बोलना-चालना तो वाचालतामें होता है, तुम सम्भवतया मौनियोंसे प्यार करते होगे, किन्तु दयालो! मौन कैसे रहूँ! यह वाणी तो अपने-आप ही फूट पड़ती है। वाणीको रोक दो, गलेको रुद्ध कर दो, जिससे स्पष्ट एक भी शब्द न निकल सके। सुस्तीमें सभी वस्तुएँ शिथिल हो जाती हैं। तुम कहते हो—'तेरे ये शरीरके बाल क्यों पड़े हैं?' प्यारे! इनमें विद्युत्का सञ्चार नहीं हुआ है। अपनी विरहरूपी बिजली इनमें भर दो जिससे ये तुम्हारे नामका शब्द सुनते ही चौंककर खड़े हो जायँ। हे मेरे विधाता! इनकी सुस्ती मिटा दो, इनमें ऐसी शक्ति भर दो जिससे फुरहुरी आती रहें। बस, जहाँ तुम्हारे नामकी ध्वनि सुनी, वहीं दोनों नेत्र लबालब अश्रुसे भर आये, वाणी अपने-आप ही

रुक गयी, शरीरके सभी रोम बिल्कुल खड़े हो गये। प्यारे! तुम्हारे इन मधुर नामोंको लेते हुए कभी मेरी ऐसी स्थिति हो भी सकेगी क्या!

श्रीकृष्ण! गोविन्द! हरे! मुरारे!
हे नाथ! नारायण! वासुदेव!

(७)

युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम्।
शून्यायितं जगत् सर्वं गोविन्दविरहेण मे॥

हाय रे प्यारे! लोग कहते हैं आयु अल्प है, किन्तु प्यारे! मेरी आयु तो तुमने अनन्त कर दी है और तुम मुझे अमर बनाकर कहीं छिप गये हो। हे चोर! जरा आकर मेरी दशा तो देखो। तुम्हें बिना देखे मेरी कैसी दशा हो रही है, जिसे लोग "निमेष" कहते हैं, पलक मारते ही जिस समयको व्यतीत हुआ बताते हैं, वह समय मेरे लिये एक युगसे भी बढ़कर हो गया है। इसका कारण है तुम्हारा विरह। लोग कहते हैं, वर्षा चार ही महीने होती है, किन्तु मेरा जीवन तो तुमने वर्षामय ही बना दिया है। मेरे नेत्रोंसे सदा वर्षाकी धाराएँ ही छूटती रहती हैं क्योंकि तुम दीखते नहीं हो, कहीं दूर जाकर छिप गये हो। नैयायिक चौबीस गुण बताते हैं, सात पदार्थ बताते हैं। इस संसारमें विविध प्रकारकी वस्तुएँ बतायी जाती हैं, किन्तु प्यारे मोहन! मेरे लिये तो यह सम्पूर्ण संसार सूना-सूना-सा ही प्रतीत होता है, इसका एकमात्र कारण है तुम्हारा अदर्शन। तुम मुझे यहाँ फँसाकर न जाने कहाँ चले गये हो, इसलिये मैं सदा रोता-रोता चिल्लाता रहता हूँ—

श्रीकृष्ण! गोविन्द! हरे! मुरारे!
हे नाथ! नारायण! वासुदेव!

(८)

आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टु मा-
मदर्शनान्मर्महतां करोतु वा।
यथा तथा वा विदधातु लम्पटो
मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः॥

हे सखि! इन व्यर्थकी बातोंमे क्या रक्खा है। तू मुझे उसके गुणोंको क्यों सुनाती है? वह चाहे दयामय हो या धोखेबाज, प्रेमी हो या निष्ठुर, रसिक हो या जारशिरोमणि। मैं तो उसकी चेरी बन चुकी हूँ। मैंने तो अपना अंग उसे ही अर्पण कर दिया है। वह चाहे तो इसे हृदयसे चिपटाकर प्रेमके कारण इसके रोमोंको खड़ा कर दे या अपने विरहमें जलसे निकाली हुई मर्माहत मछलीकी भाँति तड़फाता रहे। मैं उस लम्पटके पाले अब तो पड़ ही गयी हूँ। अब सोच करनेसे हो ही क्या सकता है, जो होना था सो हो चुका। मैं तो अपना सर्वस्व उसपर वार चुकी। वह इस शरीरका स्वामी बन चुका। अब कोई अपर पुरुष इसकी ओर दृष्टि उठाकर भी नहीं देख सकता। उसके अनन्त सुन्दर और मनोहर नाम हैं, उनमेसे मैं तो रोते-रोते इन्हीं नामोंका उच्चारण करती हूँ—

श्रीकृष्ण! गोविन्द! हरे! मुरारे!
हे नाथ! नारायण! वासुदेव!

प्रेमी पाठकोंका प्रेम दिन दूना रात चौगुना बढ़ता रहे, क्या इस भिखारीको भी उसमेंसे एक कण मिलेगा?

इति शम्।

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली समाप्तोऽयं ग्रन्थः।

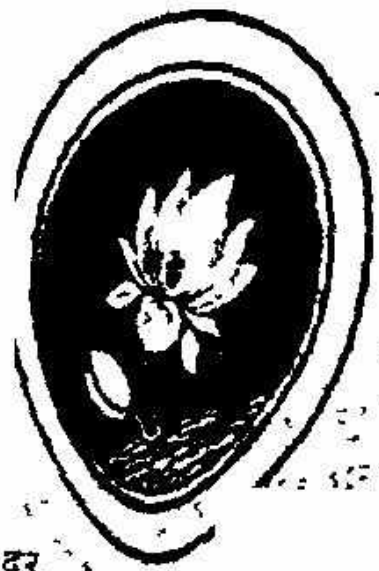

क्योंकि तुम दीखते नहीं हो, कहीं दूर
चौबीस गुण बताते हैं, सात पदार्थ बताते हैं,
वस्तुएँ बतायी जाती हैं, किन्तु प्यारे मोहन!
संसार सूना-सूना-सा ही प्रतीत होता है, इस
तुम्हारा अदर्शन। तुम मुझे यहाँ फँसाकर न जाने
इसलिये मैं सदा रोता-रोता चिल्लाता रहता हूँ—

श्रीकृष्ण! गोविन्द! हरे! मुरारे!
हे नाथ! नारायण! वा

श्रीहरिः

कृतज्ञता-प्रकाश

श्रीबदरीनारायणसे लौटनेपर जब यहाँ आया था, तब वही एक जलपात्र, भिक्षापात्र और टाटकी कथरी मेरी सम्पत्ति थी। यहाँ आनेपर बहुत दिनोंके पश्चात् पुस्तक लिखनेकी प्रेरणा हुई और उसी समय सभी आवश्यकीय पुस्तकें भी बिना विलम्बके एकत्रित हो गयीं। जिसने लिखवानेकी प्रेरणा की उसीने पुस्तकें जुटा दीं। उसकी लीला है, उसे धन्यवाद तो क्या दूँ! सेवकके धन्यवादका मूल्य ही क्या है? मूल्य न भी हो, तो भी मैं बिना ही मूल्य दे दूँ तो यह मेरी अनधिकार चेष्टा समझी जायगी। अतः उन भगवत्कृपापात्र बन्धुओंका ही शुभनाम मैं यहाँ दिये देता हूँ, जिनके पवित्र हृदयमें उसने ऐसी परम पावन प्रेरणा की। जितनी पुस्तकोंकी मैं सूची दे रहा हूँ, उनमेंसे मैंने किसीको तो केवल उलट-पुलटकर ही देखा, किसीकी विषय-सूची ही देखी, किसीको कुछ पढ़ा भी। आद्योपान्त पूरी तो शायद ही कोई पढ़ी हो। कहावत है—'लेखक लोग पुस्तकें पढ़ते नहीं सूँघते हैं।' यथार्थ बात ऐसी ही है। इन पुस्तकोंको मैंने केवल सूँघाभर है। फिर भी उनका उल्लेख कर देना तो आवश्यक ही है। लेखक, प्रकाशक, अनुवादक सभीके प्रति मैं अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करता हूँ।

विनीत—लेखक

श्रीहरिः

कृतज्ञता-प्रकाश

श्रीबदरीनारायणसे लौटनेपर जब यहाँ आया था, तब वही एक जलपात्र, भिक्षापात्र और टाटकी कथरी मेरी सम्पत्ति थी। यहाँ आनेपर बहुत दिनोंके पश्चात् पुस्तक लिखनेकी प्रेरणा हुई और उसी समय सभी आवश्यकीय पुस्तकें भी विना विलम्बके एकत्रित हो गयीं। जिसने लिखवानेकी प्रेरणा की उसीने पुस्तकें जुटा दीं। उसकी लीला है, उसे धन्यवाद तो क्या दूँ? सेवकके धन्यवादका मूल्य ही क्या है? मूल्य न भी हो, तो भी मैं विना ही मूल्य दे दूँ तो यह मेरी अनधिकार चेष्टा समझी जायगी। अतः उन भगवत्कृपापात्र बन्धुओंका ही शुभनाम मैं यहाँ दिये देता हूँ, जिनके पवित्र हृदयमे उसने ऐसी परम पावन प्रेरणा की। जितनी पुस्तकोंकी मैं सूची दे रहा हूँ, उनमेंसे मैंने किसीको तो केवल उलट-पुलटकर ही देखा, किसीकी विषय-सूची ही देखी, किसीको कुछ पढ़ा भी। आद्योपान्त पूरी तो शायद ही कोई पढ़ी हो। कहावत है—'लेखक लोग पुस्तकें पढ़ते नहीं सूँघते हैं।' यथार्थ बात ऐसी ही है। इन पुस्तकोंको मैंने केवल सूँघाभर है। फिर भी उनका उल्लेख कर देना तो आवश्यक ही है। लेखक, प्रकाशक, अनुवादक सभीके प्रति मैं अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करता हूँ।

विनीत—लेखक

	नाम पुस्तक	लेखक	प्रकाशक	किनके द्वारा प्राप्त
१	श्रीश्रीचैतन्यभागवत आदिखण्ड (बंगला)	श्रीवृन्दावनदासठाकुर; श्रीभक्तिसिद्धान्तसरस्वतीद्वारा सम्पादित। गौड़ीय भाष्य	श्रीगौड़ीयमठ, कलकत्ता	पू० हरिबाबाजी
२	श्रीश्रीचैतन्यभागवत मध्यखण्ड (बंगला)	,,	,,	,,
३	श्रीश्रीचैतन्यमंगल	श्रीलोचनदासठाकुर; श्रीभक्तिसिद्धान्तसरस्वतीद्वारा सम्पादित	श्रीचैतन्यमठ, नदिया	,,
४	श्रीअमियनिमाईचरित (प्रथम खण्ड)	श्रीशिशिरकुमार घोष	नं० २ आनन्द चट्टोपाध्याय लैन बागबाजार, कलकत्ता	श्रीरामेश्वरप्रसादजी गँवा (बदायूँ)
५	श्रीअमियनिमाईचरित (द्वितीय खण्ड)	,,	,,	,,
६	,, तृतीय खण्ड	,,	,,	,,
७	,, चतुर्थ खण्ड	,,	,,	,,
८	,, पञ्चम खण्ड	,,	,,	,,
९	,, षष्ठ खण्ड	,,	,,	,,

१०	लार्ड गौराङ्ग (अंग्रेजी) (प्रथम खण्ड)	श्रीशिशिरकुमार घोष	'अमृतबाजार' पत्रिका कार्यालय, कलकत्ता	पू० हरिबाबाजी
११	,, (द्वितीय खण्ड)	,,	,,	,,
१२	लाइफ ऑफ लव			
१३	श्रीरायरामानन्द (बंगला)	श्रीरसिकमोहन विद्याभूषण	नं० २५ बागबाजार स्ट्रीट कलकत्ता	श्रीरामेश्वरप्रसादजी गँवा (बदायूँ)
१४	श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत (बंगला)	श्रीकविराज कृष्णदास गोस्वामीविरचित (अमृत-प्रवाह और अनुभाष्यसहित)	गौड़ीय मठ, कलकत्ता	,,
१५	गम्भीराय श्रीगौराङ्ग (बंगला)	श्रीरसिकमोहन विद्याभूषण	नं० २५ बागबाजार स्ट्रीट कलकत्ता	,,
१६	नीलाचले व्रजमाधुरी (बंगला)	,,	,,	,,
१७	श्रीश्रीरामकृष्णकथामृत (बंगला) (प्रथम खण्ड)	श्री 'म' कथित	१३।२ गुरुप्रसाद चौधरी लैन, कलकत्ता	,,

नाम पुस्तक	लेखक	प्रकाशक	किनके द्वारा प्राप्त
गीत	श्रीहरिदास गोस्वामीद्वारा सम्पादित	श्रीहरिदास गोस्वामी भूपाल	श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार 'कल्याण'सम्पादक, गोरखपुर
(मूल)	ठाकुर वृन्दावनदासजी गोस्वामी	श्रीरामदेव मिश्र, श्रीहरि-भक्तिप्रदायिनी सभा, बरहमपुर	,,
(बंगला त नाटक)	श्रीरूप गोस्वामी	,,	,,
ग्रन्थ- टीकासहित)	,,	श्रीअच्युतग्रन्थमाला, काशी	सेठ गौरीशंकरजी गोयनका, खुरजा-निवासी, काशी-प्रवासी
[illegible]	[illegible]	,,	,,

२५	ब्रजमाधुरीसार (हिन्दी)	सं० वियोगीहरिजी	हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग	श्रीरामेश्वरप्रसादजी, गँवा (बदायूँ)
२६	श्रीचैतन्यचरितामृत मूल (बंगला)	श्रीकविराज कृष्णदासजी गोस्वामी	श्रीविपिनविहारी विश्वास, कलकत्ता	लाला बाबूलालजी, गँवा (बदायूँ)
२७	श्रीमद्भागवत (मूल)	भगवान् वेदव्यासप्रणीत	श्रीवेङ्कटेश्वरप्रेस, मुम्बई	,,
२८	श्रीश्रीभक्तमाल (बंगला)	श्रीलालदासबाबाजी (कृष्णदास) नाभाजीकी भक्तमाला बंगला अनुवाद	नं० २१ नन्दकुमार चौधरी द्वितीय लैन, कलकत्ता	,,
२९	श्रीमद्भागवत (हिन्दी अनुवाद) (प्रथम खण्ड)	श्रू० कु० रामस्वरूप शर्मा कृत अनुवाद	लक्ष्मीनारायणप्रेस मुरादाबाद	,,
३०	,, (द्वितीय खण्ड)	,,	,,	,,
३१	श्रीमद्भागवत (चूर्णिका टीका, संस्कृत)			श्रीठाकुरद्वारा पुस्तकालय गँवा (बदायूँ)
३२	श्रीमद्भागवत (श्रीधरी टीका)	श्रीधरस्वामीकृत संस्कृत टीका	लीथोकी छपी	,,
३३	,,	,,	,,	पं० बदरीप्रसादजी, अनूपशहर

	नाम पुस्तक	लेखक	प्रकाशक	किनके द्वारा प्राप्त
१८	श्रीश्रीरामकृष्णकथामृत (बंगला) (द्वितीय खण्ड)	श्री'म'कथित	१३।२ गुरुप्रसाद चौधरी लैन, कलकत्ता	श्रीरामेश्वरप्रसादजी, गँवा (बदायूँ)
१९	,, (तृतीय खण्ड)	,,	,,	,,
२०	,, (चतुर्थ खण्ड)	,,	,,	,,
२१	गीतगोविन्दम् (बंगाक्षरोंमें)	श्रीकविजयदेवविरचितम् संस्कृतटीका, बंगानुवाद.	१६६, बहुबाजार स्ट्रीट कलकत्ता	,,
२२	रामचरितमानस (हिन्दी)	गो० तुलसीदासजी, बाबू श्यामसुन्दरलाल बी० ए० द्वारा भाषाटीका	इण्डियन-प्रेस, प्रयाग	,,
२३	विनय-पत्रिका (हिन्दी)	गो० तुलसीदासजी, श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकृत भाषाटीका	गीताप्रेस, गोरखपुर	,,
२४	श्रीविष्णुप्रियागौराङ्गस्तवावली (संस्कृत)	अ० श्रीरामानन्द व्याख्यानविशारद.	ला० हरजीमल गणेशीलाल नया बाजार, दिल्ली	,,

२५	ब्रजमाधुरीसार (हिन्दी)	सं० वियोगीहरिजी	हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग	श्रीरामेश्वरप्रसादजी, गँवा (बदायूँ)
२६	श्रीचैतन्यचरितामृत मूल (बंगला)	श्रीकविराज कृष्णदासजी गोस्वामी	श्रीविपिनविहारी विश्वास, कलकत्ता	लाला बाबूलालजी, गँवा (बदायूँ)
२७	श्रीमद्भागवत (मूल)	भगवान् वेदव्यासप्रणीत	श्रीवेङ्कटेश्वरप्रेस, मुम्बई	,,
२८	श्रीश्रीभक्तमाल (बंगला)	श्रीलालदासबाबाजी (कृष्णदास) नाभाजीकी भक्तमाला बंगला अनुवाद	नं० २१ नन्दकुमार चौधरी द्वितीय लैन, कलकत्ता	,,
२९	श्रीमद्भागवत (हिन्दी अनुवाद) (प्रथम खण्ड)	ऋ० कु० रामस्वरूप शर्मा कृत अनुवाद	लक्ष्मीनारायणप्रेस मुरादाबाद	,,
३०	,, (द्वितीय खण्ड)	,,	,,	,,
३१	श्रीमद्भागवत (चूर्णिका टीका, संस्कृत)			श्रीठाकुरद्वारा पुस्तकालय गँवा (बदायूँ)
३२	श्रीमद्भागवत (श्रीधरी टीका)	श्रीधरस्वामीकृत संस्कृत टीका	लीथोकी छपी	,,
३३	,,	,,	,,	पं० बदरीप्रसादजी, अनूपशहर

	नाम पुस्तक	लेखक	प्रकाशक	किनके द्वारा प्राप्त
४५	श्रीमाध्वगौड़ीयतत्त्व-दिग्दर्शनम्	श्रीबाँकेविहारीलालजी 'बाँकेपिया'	निदानमहलरोड, लखनऊ	आचार्य श्रीअनन्त-लाल गोस्वामी राधारमणजीका मन्दिर श्रीवृन्दावन
४६	भक्तचरितावली (हिन्दी)	श्रीशशिभूषण वसुकी बंगला पुस्तकका अनुवाद, अ० लल्लीप्रसाद पाण्डेय	इण्डियनप्रेस, प्रयाग	बाबू रामशरणजी अग्रवाल, बी० ए०, एल० टी० मास्टर, डी० ए० वी० हाई स्कूल, बुलन्दशहर
४७	श्रीसुभाषितरत्नभाण्डा-गारम् (संस्कृत)	श्रीकाशीनाथ शर्माद्वारा संगृहीत	निर्णयसागर-प्रेस, मुम्बई	श्रीरात्मज पं० गंगासहायजी गँवा (बदायूँ)
४८	श्रीगौराङ्गमहाप्रभु(हिन्दी)	बा० शिवनन्दनसहायजी	खड्गविलासप्रेस, बाँकीपुर	श्रीआनन्द ब्रह्मचारीजी

४९	भक्तचरितावली (हिन्दी)	श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी	हिन्दीप्रेस, प्रयाग	श्रीआनन्द-ब्रह्मचारीजी
५०	श्रीचैतन्यचरितामृत (आदि खण्ड) हिन्दी	अनु० श्रीराधाचरण गोस्वामी	श्रीराधारमणजीका मन्दिर, श्रीवृन्दावन	पू० हरिबाबाजी
५१	श्रीमनुस्मृति	श्रीकुल्लूक भट्टविरचित टीका		,,

इन पुस्तकोंके अतिरिक्त 'कल्याण' सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजीने गीताप्रेससे अबतककी प्रकाशित सभी पुस्तकें तथा श्री बा० बाँकेविहारीलालजी "बाँकेपिया" जीने अपनी बिना मूल्य वितरित की जानेवाली छोटी-छोटी १४ पुस्तकें भेजी थीं। समयाभावके कारण मैं इन्हें देख भी न सका। मेरे विषयसे इनका बहुत ही कम सम्बन्ध था।

विनीत—

लेखक

श्रीचैतन्य-चरित्र-सम्बन्धी ग्रन्थ

विभिन्न भाषाओंमें हमें श्रीचैतन्यदेवके चरित्रसम्बन्धी जिन ग्रन्थोंका पता चला है, उनके नाम नीचे दिये देते हैं—

संस्कृत

१–श्रीमुरारी गुप्तका कड़चा—ले० श्रीमुरारी गुप्त (ये महाप्रभुके समकालीन थे।)

२–चैतन्य-चरित काव्य—ले० श्रीमुरारी गुप्त।

३–श्रीचैतन्यचरित महाकाव्य—ले० कवि कर्णपूर (कोई-कोई इसे इनके बड़े भाई चैतन्यदासकृत बताते हैं। ये तीनों भाई प्रभुके सामने वर्तमान थे।)

४–श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक—ले० कवि कर्णपूर।

५–श्रीगौरगणोद्देशदीपिका—ले० कवि कर्णपूर (इसमें कौन गौरभक्त किस सखीके अवतार हैं, यह बात बतायी गयी है।)

६–श्रीचैतन्यचन्द्रामृत—श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीकृत।

७–श्रीगोविन्दकड़चा—ले० श्रीगोविन्ददासजी।

८–श्रीचैतन्यचरित—श्रीचूड़ामणिदासकृत।

९–श्रीकृष्णचैतन्योदयावली—श्रीप्रद्युम्न मिश्रकृत (ये महाप्रभुके चचेरे भाई थे।)

१०–अनन्तसंहिता।

११–चैतन्यस्तवकल्पवृक्ष—(यह स्तवावलीके ही अन्तर्गत है, श्री० गो० रघुनाथदासकृत।)

१२–श्रीचैतन्यशतक—श्री० कवि कर्णपूर।

१३–श्रीचैतन्यशतक—श्रीवासुदेव सार्वभौम भट्टाचार्य।

१४–श्रीमद्गौराङ्गलीलास्मरणमंगलस्तोत्र। —श्रीकेदारनाथभक्तिविनोद

बँगला

१५–श्रीचैतन्यभागवत— श्रीवृन्दावनदास ठाकुरकृत ।

१६–श्रीचैतन्यचरितामृत—श्रीगोस्वामी कृष्णदासजी कविराजकृत ।

१७–श्रीचैतन्यमंगल—ठाकुर लोचनदासजीकृत ।

१८–मनःसन्तोषिनी—श्रीजगजीवनजी (श्रीकृष्णचैतन्योदयावलीका बँगला अनुवाद है ।)

१९–श्रीनरोत्तम ठाकुरकी पदावली ।

२०–'महाप्रकाश'—श्री० वासुदेव घोष, माधव घोष और गोविन्द घोष (ये तीनों सगे भाई थे, एक पद्यमें तीनों ही अपना नाम देते हैं, तीनों ही प्रसिद्ध पदकार और प्रभुके भक्त थे ।)

२१–गौराङ्ग-उदय—श्रीमुकुन्द पारिषद ।

२२–गौर-चन्द्रिका—श्रीमुकुन्द पारिषद ।

२३–प्रेमविलास—श्रीनित्यानन्ददास (महाप्रभुके पीछेकी लीलाओंका इन्होंने वर्णन किया है ।)

२४–श्रीगौराङ्गमहाभारत—प्रभुपाद हरिदास गोस्वामीद्वारा सम्पादित । (श्रीचैतन्यचरितामृत और श्रीचैतन्यभागवतके पद्योंके भावोंको लेकर पहले यह 'नवद्वीपलीला' और 'नीलाचललीला'के नामसे क्रमशः निकला था । बड़ा भारी पोथा होनेसे ही इसका नाम 'गौराङ्गमहाभारत' रख दिया । बड़े साइजमें छपे हुए १७७४ पृष्ठ हैं और अक्षर भी बहुत महीन हैं ।)

२५–'श्रीअमियनिमाईचरित'—ले० महात्मा शिशिरकुमार घोष (पृथक्-पृथक् छः खण्डोंमें है । घोष महाशय 'अमृतबाजारपत्रिका' नामक अंग्रेजी प्रसिद्ध दैनिक पत्रके सम्पादक थे ।

२६–निमाईसंन्यासनाटक —ले० डी० एल० राय महाशय ।

२७–गम्भीराय श्रीगौराङ्ग—ले० श्रीरसिकमोहन विद्याभूषण ।

२८–नीलाचलेब्रजमाधुरी—ले० श्रीरसिकमोहन विद्याभूषण ।

इनके अतिरिक्त श्रीविद्याभूषण महाशयने 'श्रीमद्दासगोस्वामी' 'श्रीस्वरूप दामोदर' 'श्रीराय रामानन्द' नामकी कई बड़ी-बड़ी पुस्तकें लिखी हैं । इन सभीमें गौरचरित्र ही है, क्योंकि ये सभी महानुभाव श्रीगौराङ्गके अङ्ग ही थे ।

'श्रीश्रीविष्णुप्रियागौराङ्ग' नामक बँगला मासिक पत्रिकाके सम्पादक श्रीपाद हरिदास गोस्वामीने 'गौराङ्गमहाभारत' के सिवा श्रीश्रीविष्णुप्रियाचरित, श्रीलक्ष्मीप्रियाचरित, श्रीविष्णुप्रियानाटक, श्रीगौरगीतिका, बाङ्गालीर ठाकुर श्रीगौराङ्ग, श्रीविष्णुप्रिया-विलापगीति, श्रीमुरारीगुप्त प्रतिष्ठित श्रीनिताई गौरमूर्त्तिकौहिनूर आदि छोटी-बड़ी बहुत-सी पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें सबमें ही प्रकारान्तरसे वे ही सब चैतन्य-चरितकी बातें हैं ।

अंग्रेजी

29—Lord Gouranga (In two parts): By Mahatma Shishir Kumar Ghosh.

30—Life of Love.

31—Chaitanya and his Age: By Rai Bahadur Dinesh Chandra Sen.

32—Chaitanya and his Contemporaries: By Rai Bahadur Dinesh Chandra Sen.

33—Life and Precepts of Sri Chaitanya Mahaprabhu: By Thakur Bhakti Vinode.

34—Chaitanya's Pilgrimages and Teachings: By Sir Jadunath Sirçar.

हिन्दी

३५–श्रीचैतन्यचरितामृत (ब्रजभाषामें प्रतिध्वनि आदि खण्ड)
ले० श्रीराधाचरणदास गोस्वामी विद्यावागीश।

३६–श्रीगौराङ्ग महाप्रभु—वा० शिवनन्दनसहाय।

गुजराती

३७–प्रेमावतार चैतन्यदेव—श्रीनर्मदाशङ्कर पंड्या।

इनके अतिरिक्त उड़िया, मराठी, तैलगु या अन्य भाषाओंमें श्रीचैतन्यदेवके जीवन-चरित्र-सम्बन्धी जो ग्रन्थ होंगे, उनका हमें पता नहीं चला है। हाँ उर्दूमें ४ भागोंमें एक 'गोराचाँद' नामक ग्रन्थ भी हमने देखा है।